माया सीरीज न०

जीवन-क्रम

[कहानी-संग्रह]

लेखक—
राजेश्वरप्रसाद सिंह

मूल्य—आठ आना

प्रकाशक—क्षितीन्द्र मोहन मित्र,
माया कार्यालय,
इलाहाबाद

मुद्रक—धीरेन्द्र नाथ,
माया प्रेस,
इलाहाबाद

मतभेद

"सुनते हो ?"

"कहो।" कलम रोककर कागज से दृष्टि उठाकर, रमेश ने कहा।

"रीजेंट थियेटर में 'डेविड कापरफील्ड' दिखाया जा रहा है।"

"अच्छा ! 'डेविड कापरफील्ड' डिकेंस की सर्वोत्कृष्ट रचना है। किन्तु मेरा तो विश्वास है कि ये फिल्मवाले चार्ल्स डिकेंस जैसे महान् लेखकों के साथ न्याय नहीं कर सकते।"

"नहीं कर सकते ?"

"कदापि नहीं। कम से कम मेरी राय तो यही है। मूक फिल्मों के जमाने में एक बार मैंने 'ए टेल आफ टू सिटीज' देखा था। डिकेंस की उस महान् रचना की जो दुर्गति की गई थी, उसे देखकर मुझे तो बड़ा दुःख हुआ था।"

"लेकिन जानकारों का विचार तो यह है कि फिल्म निर्माण-कला आजकल उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँच गई है।"

"यह उन्नति का युग है। प्रत्येक दिशा में उन्नति की दौड़ जारी पर है। अन्य कलाओं की भाँति फिल्म निर्माण-कला भी बहुत काफी उन्नति कर गई है। किन्तु मेरा तो यह दृढ़ विचार है कि फिल्म-निर्माताओं को चार्ल्स डिकेंस जैसे महान् लेखकों के पीछे न पड़ना चाहिए और कहानियों के लिए अपने ही कहानी लेखकों पर निर्भर रहना चाहिए।"

"तुम्हारी इस राय से मैं सहमत नहीं हूँ। किसी मामूली कहानी के आधार पर बनी हुई सुन्दर फिल्म की अपेक्षा मैं उस मामूली फिल्म को अधिक पसन्द करूँगी, जो किसी सुन्दर कहानी के आधार

पर चली हो। और कुछ न सही, फ़िल्मवाले कम से कम हम लोगों में साहित्य प्रेम तो जाग्रत कर ही रहे हैं।"

"वास्तविक, यथार्थ, उच्च कोटि के साहित्य के लिए डुगडुगी बजानेवालों की ज़रूरत न पड़नी चाहिए। 'पुष्प वह है जो खुद अपनी सुगन्ध फैंके, न कि प्रचार उसका ढिंढोरा पीटे!' साहित्य वह पवित्र मन्दिर है, जिसके द्वार सदैव सबके लिए खुले रहते हैं। उच्च कोटि के मानसिक मनोरञ्जन तथा ज्ञान की कामना रखनेवाले सदैव वहाँ आते हैं और सन्तुष्ट होकर जाते हैं।"

"तुम आदर्शवादी हो, स्वप्न-लोक के निवासी हो। [illegible] बातें करने में तुम्हें मज़ा आता है। अगर मैं यह कहूँ कि यदि साहित्य को अपने क्षेत्र का विस्तार करना है, तो उसे व्यवसाय की सहायता अवश्य लेनी होगी, तो इसके जवाब में कोई न कोई टेढ़ी-साधी बात तुरन्त कह दोगे। ख़ैर, यह सब रहने दो। मतलब की बात करो। कहो, 'डेविड कापरफील्ड' देखने चलोगे?"

रमेश हँस पड़ा।

"बोलो?"

"नहीं चल सकता, प्रिय।"

"क्यों?"

"यह लेख मुझे इसी समय समाप्त करना है। 'टम्पेट' को अपने अगले साप्ताहिक के लिए इसकी ज़रूरत है। कल ही इसे रवाना कर देना होगा, ताकि देर न हो जाय।"

"सिनेमा से लौटने के बाद इसे आसानी से समाप्त कर सकते हो।"

"लिखने की मनःस्थिति इस समय मौजूद है और इसे खोने का मौक़ा न देना चाहिए। रात को यह न लौटी तो क्या करूँगा? इस ख़तरे में न पड़ूँगा। मुझे मुआफ़ करो, प्रिये। आज अकेले ही चली [illegible] तुम्हारे साथ जरूर चलूँगा।"

"अच्छी बात है, न जाओ।" नाराज़ होकर, तेज़ी से उठकर आशा कमरे से बाहर हो गई।

रमेश ने दीर्घ निःश्वास खींचा। आशा के स्वर ने, भाव-भंगी ने साफ़ कह दिया था सँभलो, तुम्हारी ख़ैरियत नहीं। किन्तु रूठी बीबी को मना लेने, उसके मन की करने या आनेवाले झगड़े पर विचार करने के लिए उसके पास समय न था। क़लम उठाकर वह अपने अग्रलेख पर ध्यान जमाने लगा।

सीधे पोर्टिको में पहुँचकर आशा मोटर-कार में बैठ गई। शोफ़र ने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

"सीनेट थियेटर चलो।"

"बहुत अच्छा, सरकार।" वह अपनी सीट पर बैठ गया। कार चल पड़ी।

रमेश से, उसकी आदतों से, उसकी कार से, उसके विचारों से वह तंग आ गई थी।

तीन वर्ष हुए, एक मित्र के घर पर रमेश से उसकी पहले-पहल भेंट हुई थी और उसे ज्ञात हुआ था कि उसके अतिरिक्त वह किसी अन्य पुरुष को प्यार नहीं कर सकती। वह भी उसकी ओर आकृष्ट हुआ था। वह धनी था, रूपवान् था, लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक था, सुविख्यात पत्रकार था। वह भी सुन्दरी थी, स्वतन्त्र प्रकृति की नवयुवती थी और उसी वर्ष ग्रेजुएट हुई थी। इस तरह दोनों एक-दूसरे के सर्वथा उपयुक्त थे। जब रमेश ने अपना प्रेम प्रकट किया, तब उसने भी अपना हृदय खोलकर रख दिया। दोनों ने विवाह कर लेने का निश्चय कर लिया।

जहाँ तक आशा का सम्बन्ध था, कोई कठिनाई न थी। उसी की भाँति उसके पिता भी स्वतन्त्र विचारवाले व्यक्ति थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि वह बदमाश भिखमंगों को छोड़कर जिस

विवाह कर सकती है। किन्तु उसके भाग्य में रोग लिखा थी। उसके पिता पुराने विचार के कट्टर हिन्दू थे। वह ब्रह्म-समाज को अनिष्ट दृष्टि से देखते थे और अधिकार समझते थे। रमेश ने जब अपना विवाह सम्बन्धी निश्चय की सूचना उन्हें दी तब वे अत्यन्त क्रुद्ध हो गए। गैर जाति की लड़की के साथ शादी कर लेने को वह हिन्दुत्व के प्रति अपमान समझते थे। कैसे सहते? नहीं, यह असम्भव था। उन्होंने उसे आज्ञा दी कि वह अपना अभागा निश्चय तुरन्त बदल दे। उसे यह धमकी भी दी गई कि यदि वह अपने निश्चय पर अड़ा रहा, तो उनके वसीयतनामे से उसका नाम काट दिया जायगा। किन्तु रमेश धमकी में आ जानेवाला न था।

कुछ समय के बाद उन दोनों का विवाह सिविल मैरिज एक्ट के अनुसार प्रभा के पिता विनोदचन्द्र तथा कतिपय मित्रों की उप-स्थिति में सम्पन्न हो गया। तत्पश्चात् विनोदचन्द्र ने उदारतापूर्वक सहायता दी, दोनों का स्वतन्त्र घर स्थापित हो गया। रमेश के पिता यदुनाथ को पुत्र की हरकत बहुत बुरी लगी। आवेश में आकर उन्होंने उसका नाम अपने वसीयतनामे से निकाल दिया। कुछ दिनों के बाद जब उनका क्रोध शान्त हो गया, तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया, नया 'विल' लिखा और उसे यथेष्ट आर्थिक सहायता देते रहे।

सुख के पथ पर उन दोनों का वैवाहिक जीवन बहुत दिनों तक सुव्यवस्थित गति से चलता रहा। एक दूसरे की संगति में दोनों को अद्भुत आनन्द प्राप्त होता था—ऐसा आनन्द जैसा उन्हें कभी नहीं प्राप्त हुआ था, वह आनन्द जो शारीरिक सीमाएँ पारकर आध्यात्मिक रस में घुल-मिल जाना चाहता है। दोनों के बीच पूर्ण सामञ्जस्य था—शरीर तथा आत्मा में सामञ्जस्य, विचारों तथा आदर्शों में, इच्छाओं तथा अभिलाषाओं में।

फिर प्रतिक्रिया आई—वह भयङ्कर प्रतिक्रिया जो उनके पारस्परिक अस्तित्व को पूर्णतया रसहीन कर देने पर तुली हुई थी। विभेद उठ खड़े हुए। आये दिन झगड़े होने लगे। नूतन दृष्टि-कोण से वे एक दूसरे को देखने लगे। दोनों की बुराइयाँ दोनों को अतिरञ्जित होकर दिखाई देने लगीं। उनमें निवास करनेवाले प्रेमी दूर गये, और आलोचक उठ खड़े हुए और एक-दूसरे के सिर पर यथार्थ तथा कल्पित दोष मढ़ने लगे। ऐसा हो गया मानो दोनों में किंचित्-मात्र भी सामञ्जस्य न था, मानो कुटिल दुर्भाग्य ने दोनों को जबरदस्ती एक-दूसरे के गले मढ़ दिया।

प्रेम अपने शैशवकाल में, सब कुछ दे देना और पाना चाहता है। इस सम्पूर्ण समर्पण के मध्य के स्वर्ण मार्ग से वह सर्वथा अपरिचित होता है। ठोकरें खाकर, प्रौढ़ होकर जब वह अधिक देने और कम या कुछ न पाने की कामना रखने के औचित्य को समझ लेता है, तभी वह ओजस्वी, पावन तथा निष्कलङ्क बन पाता है। परिवर्तन-काल के कण्टकाकीर्ण पथ पर अज्ञात रूप से चलते हुए आशा और रमेश पहली अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर धीरे धीरे बढ़ रहे थे—उस अवस्था की ओर जो उन्हें जीवन तथा संसार को उनके वास्तविक रूप में देखने और समझने की क्षमता प्रदान करने को थी। तब इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि वे विकल थे, अशान्त थे, अन्धकार में भटक रहे थे।

(२)

आशा की मोटर रीजेंट थियेटर के सामने पहुँचकर रुकी। पहले शो के शुरू होने में अभी बहुत देर थी। कार से उतरकर वह बरामदे में पहुँची। इतमीनान से इधर उधर घूमते हुए दो-चार थियेटर के कर्मचारियों के अतिरिक्त वहाँ और कोई न था। रेस्तराँ के दरवाजे खुले थे और अन्दर एक मेज़ के सामने बैठा हुआ एक गोरा सैनिक चाय पी रहा था। गार्ड के समीप जाकर वह उस पर लगे हुए फोटो देखने लगी।

उन चित्रों में 'डेविड कॉपरफ़ील्ड' के अनेक मार्मिक दृश्य अंकित थे, किन्तु उन्हें देखने में उसका मन न लगा।

तब वह दूसरे बरामदे में चली गई और विचारों में डूबी हुई धीरे धीरे टहलने लगी। अवहेलना का विकल भाव उसके हृदय में व्याप्त था। मस्तिष्क में भी उसे ऐसा जान पड़ता, जैसे इस विषाद् सिन्धु में उसका पार न था। रमेश क्या उसे अब नहीं चाहता? बिलकुल नहीं चाहता, यह तो स्पष्ट ही है। उसके प्रेम में वह उष्णता, वह स्निग्धता नहीं है जो पहले थी और जिसे वह पसन्द करती थी। उसके पास पहुँचने पर अब तो उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो वह किसी हिमाच्छादित पर्वत के समीप हो। उसकी छोटी से छोटी इच्छा पहले उसके लिए मान्य होती थी, किन्तु अब तो उसकी किसी इच्छा की उसे ज़रा भी परवा नहीं। अगर वह आना चाहता तो क्या थोड़ी देर के लिए लिखाई बन्द करके यहाँ नहीं आ सकता था? लिखने की मन स्थिति! सब बहानेबाज़ी! लिखने का जिसे अभ्यास हो, जो नित्य लिखता हो, वह जब चाहे क़लम उठाकर लिख सकता है। वह आना नहीं चाहता था, इसलिए एक बहाना पैदा कर दिया। प्यार जब दिल से उठ गया तब अवहेलना के सिवा कोई क्या दे सकता है? ऐसा परिवर्तन उसमें कैसे हो गया? उसने तो कोई अपराध नहीं किया। वह तो उसे अब भी उतना ही चाहती है जितना पहले चाहती थी। फिर पग-पग वह उसका तिरस्कार क्यों करता है? क्या वह किसी दूसरी स्त्री को चाहने लगा है? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। उसके जान में तो उसकी कोई स्त्री मित्र न थी। क्या उसने कभी सच्चे दिल से उसे प्यार नहीं किया? कौन जाने?

सहसा उसने देखा, दो सजे धजे युवक उस ओर खड़े हुए उसे घूर रहे थे। वे कौन हैं? वह तो उन्हें नहीं जानती। फिर वे उसे क्यों घूर रहे हैं? पुरुष स्त्रियों को क्यों घूरते हैं? स्त्रियाँ घूरी जाना पसन्द

करती हैं', रमेश ने एक बार मज़ाक़ में कहा था, 'इसीलिए मर्द उन्हें घूरते हैं।' स्त्री-जाति के प्रति ये कैसे अपमानजनक वाक्य हैं और मर्दों की बुरी आदत की कैसी झूठी सफ़ाई है। उस समय वह हँस पड़ी थी, लेकिन आज तो उसे हँसी नहीं आती। कम से कम वह तो घूरी जाना पसन्द नहीं करती। फिर ये असभ्य युवक उसे क्यों घूर रहे हैं? कदाचित् वे भी अपनी स्त्रियों से घृणा करते हैं। वह पुरुष जो अपनी स्त्री से प्रेम करता है, शायद किसी दूसरी स्त्री की ओर देखना पसन्द न करेगा। क्या यह सत्य है? कदाचित् है, कदाचित् नहीं। मर्द कितने स्वार्थी होते हैं, कितने बेरहम! खीझकर वह अपनी कार के समीप गई और उसमें बैठ गई।

"बेनी! मेरे लिए टिकट खरीद लाओ।" पाँच रुपये का एक नोट उसने शोफ़र की ओर बढ़ा दिया।

"बहुत अच्छा, हुज़ूर।" नोट लेकर वह चला गया।

ये लोग आखिर कब रेस शुरू करेंगे? तबीयत कितनी ऊब रही है! जल्दी आ जाना कितना बुरा हुआ! यह भी रमेश के कारण। अगर वह आने से इनकार न करता तो वह इतनी जल्दी क्यों आती? वह कितना समझदार है! वह जो कुछ कहता है तोलकर कहता है, जो कुछ करता है तोलकर करता है! वाह री उसकी बुद्धिमानी!

बेनी वापस आया, और टिकट और बाक़ी रुपये स्वामिनी को दे दिये। पहली घंटी बजी। जाकर अपनी सीट पर बैठ जाना चाहिये? लेकिन भीड़ तो ज़्यादा नहीं दिखाई देती। नहीं, कोई जल्दी नहीं है। अभी से जाकर बैठना लोगों को फिर घूरने का मौक़ा देना होगा। काफ़ी घूर घार हो चुकी, कम से कम आज के लिए! आखिरी घंटी बजने का इन्तज़ार करना ही मुनासिब है।

अन्त में जब आखिरी घंटी बजी तब वह मोटर से उतरी और अव्वल दर्जे की ओर बढ़ी। भीड़ ज़्यादा नहीं थी। गेट-कीपर को

देकर वह अन्दर घुसी। एक को छोड़कर सब बत्तियाँ बुझ चुकी थीं। अच्छा! अब भी खेल शुरू नहीं हुआ! अजब लापरवाह हैं ये लोग!

× × ×

सात बजकर ३० मिनट हो चुके थे जब रमेश ने अपने लेख का अन्तिम शब्द लिखा। लेख दोहराकर, हस्ताक्षर कर, अच्छा-सा शीर्षक लगाकर, सन्तोष की साँस लेकर, मुस्कराकर, उसने सिगरेट जलाया। उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उसने गहरा पत्थर मारा हो। काँग्रेसवादियों के कौंसिल प्रवेश के औचित्य के सम्बन्ध में उसने अनोखी बातें अनोखे ढंग से कही थीं। अपरिवर्तनवादी काँग्रेसी यह लेख पढ़कर जल उठेंगे। कैसा मज़ा रहेगा!

सहसा आशा की छाया-मूर्ति उसकी आँखों के सामने आ उपस्थित हुई। 'अच्छी बात है, न चलो!' उसके ये शब्द उसके कानों में गूँज उठे। उसके स्वर में भयंकर नाराज़गी थी, प्रतिकार की विकट इच्छा थी। किन्तु क्या उसका इतना रूठ जाना उचित था? क्या यह प्रत्येक पति का अनिवार्य कर्त्तव्य है कि उसकी पत्नी जब कभी और जहाँ कहीं जाय, वह उसके साथ जाय? यह कैसी अनुचित माँग है! अगर वह उसे पहले ही से बता देती तो शायद वह उसके साथ जा सकता। किन्तु केवल उसे खुश करने के लिए उस समय लिखना बन्द कर देना उसके लिए असम्भव था। यह बात न थी कि उसे मनोरंजन की आवश्यकता न थी। थी, बहुत थी। किन्तु केवल मनोरंजन के लिए किसी आवश्यक काम को स्थगित कर देना उसके स्वभाव के विरुद्ध है। ऐसी परिस्थिति में वह दोषी कैसे ठहराया जा सकता है? अगर बेमतलब रूठने में उसे मज़ा आता है तो वह शौक़ से रूठे। आजकल बात-बात पर उन दोनों के बीच मतभेद क्यों उठ खड़े होते हैं? किसी विषय में वे सहमत क्यों नहीं हो पाते? अब भी वह उससे उसी तरह प्रेम करता है, जैसे पहले करता

था। उसने उसे पूरी स्वतन्त्रता दे रक्खी है। उसकी किसी बात में वह दखल नहीं देता। वह छोटी-छोटी सेवायें भी तो उससे नहीं लेता, जो अन्य पति अपनी पत्नियों से लेते हैं। अपना देख-रेख स्वयं कर लेने की आदत उसने बाल्यकाल में ही डाल ली थी, और उसकी यह आदत अभी तक जैसी की तैसी बनी हुई है। वह सदैव प्रसन्न रहने की चेष्टा करता है। कष्ट होने का कारण मिलने पर भी वह कष्ट न होने का प्रयत्न करता है। फिर भी आशा उससे खुश नहीं रहती। क्या वह चाहती है कि वह उसके सेवक की भाँति व्यवहार करे? एक स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति ऐसा व्यवहार कदापि नहीं कर सकता। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। उसका ख्याल है कि परिस्थिति के अनुकूल अपने को बना लेने की उसमें क्षमता है। किन्तु यह उसका भ्रम-मात्र है। वह सुशिक्षिता है, किन्तु उसे कभी समझ नहीं सकी, उसके अनुरूप अपने को बना नहीं सकी। स्त्री अपने पति से बहुत अधिक माँगती है—उतना माँगती है जितना वह दे नहीं सकता। अपनी इस अनुचित माँग की पूर्ति के निमित्त, स्वेच्छाचारिता तथा जिद के अस्त्र लेकर, वह भयङ्कर युद्ध करती है, और उसका पति जब अपने पुरुषत्व की सहायता लेकर अपने अधिकारों की सार्थकता सिद्ध कर लेता है, तभी वह अनिवार्य रूप से सम्मुख नतमस्तक होने के औचित्य को स्वीकार करती है। यह बात कितनी खेदजनक है, किन्तु कितनी सत्य है! आशा इस नियम का अपवाद नहीं है। क्या उसे भी उसके विरुद्ध वही कारवाई करनी पड़ेगी, जो अन्य पतियों ने अपनी स्त्रियों के विरुद्ध की है? ज़रूर करनी पड़ेगी। पर वह पशु-बल से काम न लेगा। उसका-सा सभ्य व्यक्ति पशु-बल से काम लेना पसन्द नहीं कर सकता। वह कारवाई तो शायद उसने शुरू भी कर दी है। हाँ, शायद कर दी है।

उठकर वह कमरे से बाहर निकला। थोड़ी देर के बाद वह घूमने चला गया। साढ़े दस बजे वह वापस आया। एक नौकर से पूछने पर

उसे ज्ञात हुआ कि आशा बिस्तर पर लेट गई है, उसने खाना नहीं खाया है और वह अपने शयनागार में है। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। यह तो वह जानता ही था कि उसके इस रूखे व्यवहार का [illegible] आशा करना व्यर्थ है। उसे मनाने के विचार से वह शयनागार की ओर चला। किन्तु क्या आशा थी कि वह उसे मना पायेगा? असम्भव।

शयनागार का दरवाजा भिड़ा हुआ था, लेकिन उसकी सिटकिनी नहीं लगी थी। धीरे से दरवाजा खोलकर उसने कमरे में प्रवेश किया। [illegible] हुए आशा अपने बिस्तर पर लेटी हुई थी और उसकी आँखें बन्द थीं। वह बिस्तर के समीप पहुँचा।

"आशा!"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तब बिस्तर पर बैठकर उसने धीरे से उसे हिलाया।

"मुझे तंग मत करो।"

"उठो प्रिय!"

"क्यों उठूँ?"

"सोने का वक्त अभी नहीं हुआ है और तुमने भोजन भी नहीं किया।"

"मुझे भूख नहीं है और मैं सो रही हूँ।"

"नहीं, तुम जाग रही हो और मन में मुझे कोस रही हो। मुझे बड़ा अफसोस है!"

"अफसोस करने की तुम्हें क्या जरूरत है? तुमने कौन-सी गलती की है? तुम तो कभी कोई गलती नहीं करते!"

"न जाने क्यों आजकल तुम मुझे समझने की कोशिश नहीं करतीं?"

"मैं तुम्हें खूब समझती हूँ, तुमसे अधिक समझती हूँ। मेरी इच्छाओं की अवहेलना करने में तुम्हें बड़ा मज़ा आता है। तुम्हारे अन्दर जो नवाबीपन है, वही सारे फसाद की जड़ है।"

"इस प्रशंसा के लिये धन्यवाद! किन्तु मैं नहीं जानता कि इस प्रशंसा के योग्य हूँ या नहीं।"

"तुम मसखरे हो और इससे तुम इनकार नहीं कर सकते।"

"खैर, यही सही। लेकिन लोग कहते हैं कि मसखरा किसीको नुकसान नहीं पहुँचाता।"

"यह मैं नहीं मानती।"

"कम से कम यह घृणा का पात्र तो नहीं होता।"

"मैं उससे घृणा नहीं करती। हाँ, उसे नापसन्द ज़रूर करती हूँ।"

"क्या यह वान्छनीय नहीं है कि पति अपनी स्त्री की उचित इच्छाओं की अवहेलना न करे? लेकिन तुम्हें तो अगर किसी बात से मतलब है तो वह है लिखना-पढ़ना। कम से कम मुझसे तो तुम कोई मतलब रखना ही नहीं चाहते।"

"यह ऐसा दोष है जिसे मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता। आज भी मैं तुम्हें उतना ही चाहता हूँ, जितना पहले चाहता था। तुम्हारी उचित इच्छाओं को सदा मानने का प्रयत्न करता हूँ, यदि मानना असम्भव नहीं होता। आत्म विकास की आवश्यकता मुझे लिखने के लिए प्रेरित करती है, और लिखना मेरे लिए उतना ही आवश्यक है जितना किसी दूसरे का कोई दूसरा काम करना। जब मैं लिखता रहता हूँ तब कोई दूसरा काम करना असम्भव होता है। इसलिये अगर आज शाम को मैं तुम्हारी बात नहीं मान सका, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।"

"आज का ही बात नहीं है। बीसों बार तुम ऐसा कर चुके हो। साफ-बात तो यह है, निराशा के अतिरिक्त मैं तुमसे कुछ नहीं पा सकी!"

"निराशा की बात करती हो तो मुझे भी कहना पड़ेगा कि तुम्हारे सम्बन्ध में मेरे भी यही विचार है। फिर भी मैं तुम्हें प्यार करता हूँ— तुम्हारे गुण-अवगुण सहित तुम्हें प्यार करता हूँ।

"जब तुम्हारे कार्य तुम्हारे शब्दों का समर्थन नहीं करते, तब मैं यह कैसे मान लूँ ?"

"तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ, आशा ! हम बच्चे नहीं हैं, हम समझदार हैं, जवान हैं। हमारा यह कर्त्तव्य है कि एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझें और अपनी गलतफहमी को दूर करें।"

"तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने भारी भूल की। अगर किसी मामूली भाड़े आदमी से भी शादी करती, तो शायद आज से अधिक सुखी होती।"

"ये ऐसे शब्द हैं जिन्हें मैं हर्गिज बरदाश्त नहीं कर सकता। उचित अनुचित का विचार तुम्हें जरा भी नहीं रह गया है। ऐसे अपमानजनक शब्द सुनने के बाद शायद कोई स्वाभिमानी पति अपनी स्त्री से कोई सम्बन्ध रखना पसन्द न करेगा। तुम अपने को क्या समझती हो—परी, रानी या क्या ?"

"चाहे मैं संसार की सबसे कुरूप स्त्री ही क्यों न होऊँ, लेकिन तुम्हारी धौंस सहने के लिए अब मैं तैयार नहीं हूँ।"

तीव्र वेग से उमड़ते हुए क्रोध को वश में रखना असम्भव जानकर रमेश उठ कर तेज़ी से कमरे के बाहर निकल गया।

वाचनालय में जाकर वह एक आराम कुरसी पर लेट गया। नौबत यहाँ तक पहुँच गई! मामला इतना बिगड़ गया! कोई व्यक्ति ऐसी स्त्री से कैसे सम्बन्ध बनाये रख सकता है जो इतनी शान बघारती है, जिसे औचित्य-अनौचित्य का लेश-मात्र भी विचार नहीं रह गया है, समझाने-बुझाने का भी जिस पर कोई असर नहीं पड़ता। विलग होने का समय शायद आ गया है। जो लोग साथ-साथ शान्ति के साथ नहीं रह सकते उन्हें अलग हो जाना ही उचित है। हे ईश्वर ! अब क्या करना चाहिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल आशा को एक पत्र मिला। वह इस प्रकार था—

"प्यारी आशा,

यह बात अत्यन्त खेदजनक है कि इधर हम दोनों को एक-दूसरे की संगति में सुख प्राप्त नहीं हो रहा है। वैवाहिक जीवन की सार्थकता सुख पर ही आधारित है। इसलिये उचित यही है कि जब कभी पति या पत्नी या दोनों को उनके वैवाहिक जीवन से सुख प्राप्त न हो, तो उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाय। वर्तमान क़ानून के अनुसार हम लोगों का सम्बन्ध विच्छेद होना असम्भव है। किन्तु अपनी समस्या हल करने के लिये हमारे सामने एक मार्ग है। अनेक आलोरिन क़ानून विद्यमान हैं और उनके अनुसार कार्य करने के लिये लोग स्वतन्त्र हैं। बिना शोर शराबा किये गुप्त रूप से हम अपना सम्बन्ध तोड़ सकते हैं और एक-दूसरे को एक-दूसरे के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का अवसर दे सकते हैं। इस सम्बन्ध में तुम्हारे विचार क्या हैं? कृपया इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करो। मैं चाहता हूँ कि आज तीसरे पहर तुम मेरे साथ इस प्रस्ताव पर विचार करो। इस समय मैं बाहर जा रहा हूँ और एक बजे वापस आऊँगा। स्वतन्त्र रूप से गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिये इतना समय शायद तुम्हारे लिये काफी होगा।

तुम्हारा,
रमेश"

आशा क्रोध से काँपने लगी। पत्र पढ़कर उसने एक ओर फेंक दिया। बात इस हद तक पहुँच गई! चले पर नमक! वह अपने को क्या समझता है? उसके साथ सम्बन्ध जोड़े रहने के लिये क्या वह मर रही है? क्या उसमें आत्मसम्मान का अभाव है? वह किसीकी धौंस सहनेवाली स्त्री नहीं है। उसकी कृपा प्राप्त करने के लिये वह अनुनय विनय न करेगी—कदापि न करेगी। अपने पिता के घर जाकर वह शेष जीवन शान्ति के साथ व्यतीत कर सकती है। इस कलहपूर्ण वातावरण में क्या रक्खा है?

और रमेश ? वह भी सुखी न था। सुविकसित पुष्प की भांति, जो घर सदा खिलखिलाता रहता था, सहसा आकर्षणहीन हो गया था। पहले ही की तरह अब भी वह साफ-सुथरा रहता था, किन्तु हर समय उसमें अजीब सूनापन दिखाई देता था। उसके हृदय में भी किंचित सूनापन आ गया था। काम में भी उसका मन न लगता। लिखने की मनःस्थिति किसी समय उत्पन्न न होती। वह ज़बरदस्ती लिखता, किन्तु सन्तोषजनक ढंग से कुछ न लिख पाता। उसके आश्चर्य का ठिकाना न था। आशा से उसकी लेखन क्रिया का तो स्पष्टतः कुछ सम्बन्ध न था। उसके इस काम में तो वह बाधा ही उपस्थित करती थी। इस सम्बन्ध में उसके विरोध की भावना के ही कारण तो उन दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद हुआ था। उसकी अनुपस्थिति से लेखन शक्ति को प्रेरणा मिलनी चाहिये थी। फिर यह उलटी बात क्या हुई ?

उसका क्या हाल है ? उसकी दिनचर्या क्या है ? किन्तु उसके लिये चिन्तित होने की उसे क्या आवश्यकता है ? वह तो अब उसे नहीं चाहती। 'तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने भारी भूल की।'—उसके इन शब्दों का और क्या मतलब है ? विचित्र है स्त्री-चरित्र। क्या अब भी वह उससे प्रेम करता है ? नहीं करता। शायद करता है। उसे भूल जाने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिये। भूल जाना सम्भव है ? शायद है। शायद नहीं है। तब क्या करना चाहिये ? समझौता ? नहीं, यह असम्भव है। यह उसके जानने से बाहर जा चुकी है। उसकी इच्छा के विरुद्ध वह कैसे उसे पुनः प्रवेश का निमन्त्रण दे सकता है ? कैसी विषम परिस्थिति है !

दिन का तीसरा पहर था। रमेश समालोचनार्थ आई हुई एक पुस्तक पढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। सहसा उसके श्वसुर विनोदचन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया। रमेश सम्मानार्थ उठ खड़ा हुआ। प्रणाम

आशीर्वाद के बाद दोनों बैठ गये। विनोदचन्द्र ने मुस्कराकर कहा—"रमेश! तुमसे एक सीधा-सा सवाल करना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि ठीक ठीक जवाब दोगे।"

"मैंने कभी आपसे कोई बात छिपाने की कोशिश नहीं की।"

"मैं यह जानता हूँ और इस बात के लिए तुमसे बहुत खुश हूँ। इस समय जो कुछ जानना चाहता हूँ वह यह है—क्या आशा और तुम्हारे बीच झगड़ा हो गया है?"

"क्या मैं यह जान सकता हूँ कि आप यह क्या पूछ रहे हैं?"

"मेरा हृदय पिता का हृदय है और मैं देखनेवाली आँखें रखता हूँ। आशा ने तो मुझसे कुछ नहीं कहा, लेकिन मेरा ख्याल है कि तुम दोनों में ज़रूर झगड़ा हो गया है। उस दिन जब वह मेरे घर ढेरों असबाब लेकर पहुँची तभी मुझे सन्देह हुआ था। उसने मुझे बतलाया था कि वह स्थान-परिवर्तन के विचार से आई है, किन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ था। मैंने और सवाल किये, लेकिन वह बात टालने की कोशिश करती रही। उसका चेहरा उतरा हुआ था और वह थकी हुई सी मालूम होती थी। कई दिन बीत गये, लेकिन उसकी तन्दुरुस्ती नहीं सुधरी। तब मैंने अपने डाक्टर को बुला भेजा। उसकी परीक्षा करने के बाद डाक्टर ने मुझे बतलाया कि किसी मानसिक आघात के कारण उसे कोई स्नायु रोग हो गया है। तब से उसका इलाज हो रहा है, लेकिन कोई फायदा दिखाई नहीं देता। उसका चेहरा मुरझाया रहता है और वह बहुत दुबली हो गई है। दिन-रात वह अपने में ही खोई रहती है और किसी मित्र से मिलना-जुलना भी उसे पसन्द नहीं है। किसी मनोरञ्जन के वह पास नहीं फटकती। इतने दिनों से वह मेरे यहाँ मौजूद है और तुम एक बार भी नहीं आये। तुम्हीं बतलाओ, इन बातों से क्या मालूम होता है?"

तब रमेश ने उपर्युक्त दुःखद घटनायें बयान कर दीं। उसने कोई बात नहीं छिपाई। विनोदचन्द्र ठहाकर हँस पड़े।

"रमेश ! अब तक मैं तुम्हें गम्भीर स्वभाव का व्यक्ति समझता आया हूँ, लेकिन आज यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई कि तुम बच्चों की तरह भी व्यवहार कर सकते हो। क्या तुम यह समझते हो कि आशा के बिना सुखी रह सकते हो? अगर तुम्हारा यह ख्याल है, तो तुम भारी भ्रम में हो। जब तुम्हारी शादी के मामले में मैंने आशा की रजामंदी ली थी, तब उसी समय मैंने उसे खूब जाँच लिया था। बेटा ! स्त्रियों के मामले में पुरुषों को बड़ी होशियारी से काम लेना पड़ता है। अपनी पत्नियों पर अधिकार क़ायम रखने के लिए हमें कभी झुकना पड़ता है, कभी तन जाना पड़ता है। किन्तु प्रत्येक दशा में उनकी मान-रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य होता है। हमसे इतनी ही आशा करने का उन्हें पूरा अधिकार है।"

"मैं यह मानता हूँ, पापा कि मुझसे बड़ी गलती हुई।"

"अभी बहुत हानि नहीं हुई है। अब तुम एक काम करो। फ़ौरन मेरे साथ चलो और उससे समझौता कर लो।"

"लेकिन, पापा, क्या यह सचमुच उचित है कि...।"

"आगा-पीछा मत करो, बेटा ! मैं तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ और तुमसे अधिक अनुभवी हूँ। जो कहता हूँ, करो।"

"बहुत अच्छा, पापा !"

तब दोनों उठकर चले गये।

आध घण्टे में रमेश ने आशा के कमरे में प्रवेश किया। एक बार उसकी ओर देख कर आशा ने सिर झुका लिया। रमेश झपटकर उसके समीप पहुँचा, उसके बगल में बैठ गया और उसे भुजाओं में कस लिया।

"आशा ! प्यारी आशा ! मैं जानता हूँ कि मैंने तुम्हारे साथ जानवर का-सा बर्ताव किया है। मुझे क्षमा कर दो... मुझे क्षमा...।"

"मुझसे भी बड़ी भूल हुई।" आशा ने अवरुद्ध कंठ से कहा। "मेरा अपराध भी कम नहीं है। स्वार्थ ने, मिथ्याभिमान ने मुझे मूर्ख बना दिया था, अन्धी बना दिया था। मुझे समझना चाहिए था कि अपने प्रति भी तुम्हारी कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं।"

"तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। जीवन के अन्तिम दिवस तक, चिर काल तक मैं तुम्हें प्यार करता रहूँगा। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध अब कभी कोई कार्य न करूँगा।"

"और मैं अब कभी तुम्हारे काम में विघ्न न डालूँगी और तुम्हारी आज्ञाकारिणी स्त्री बनी रहने का सदा प्रयत्न करूँगी।"

उस कमरे के अधखुले दरवाज़े के समीप विनोदचन्द्र दबे पाँव आये और एक बार अन्दर झाँककर हट गये। 'अन्त ठीक तो सब ठीक!'— उन्होंने मुस्कराकर धीरे से कहा। उस समय उनका हृदय आत्मगौरव तथा अगाध सन्ताप से भर गया था।

माता का हृदय

मध्याह्न का समय था। गौरव तथा यौवन के उस हाट में सन्नाटा व्याप्त था। उधर से एक गाड़ी आकर एक मकान के सामने रुकी। तुरन्त कोचबॉक्स से उतरकर, कोचवान ने गाड़ी का दरवाज़ा खोल दिया। भद्र वेश की एक अधेड़ उम्र की महिला नीचे उतरी।

"यही है उसका घर!"

"जी हाँ, सरकार!" कोचवान ने उत्तर दिया—"दरवाज़ा तो बन्द है। देखिए, अभी खुलवाता हूँ।"

कोचवान बढ़कर, घर के बन्द दरवाज़े के समीप पहुँचकर साँकल खटखटाने लगा। जवाब नहीं मिला। उसने फिर खटखटाया। फिर जवाब नहीं मिला। कई बार खटखटाने के बाद एक व्यक्ति ने दरवाज़ा खोला। अँगड़ाई लेकर, वह कोचवान की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगा। भद्र महिला आगे बढ़ी। कोचवान अलग हट गया।

"आप क्या चाहती हैं?"

"दुलारी बाई से मिलना चाहती हूँ।"

"इस वक्त तो वे आराम कर रही हैं।"

"बहुत जरूरी काम है।" पर्स खोलकर, दो रुपये निकालकर उसने उस व्यक्ति की ओर बढ़ाये।

ललचायी हुई दृष्टि से रुपयों की ओर देख कर, दाँत निकालकर, उसने कहा—"इसकी क्या जरूरत है! आपका खादिम हूँ।"

"ले लो।"

रुपये लेकर वह बोला—"ऊपर तशरीफ़ ले चलिये। अभी मिलाता हूँ।"

वह आगे बढ़ा। वह पीछे चली। सीढ़ियों पर चढ़कर, दोनों एक सुसज्जित कमरे में पहुँचे। मसनद की ओर इशारा करके उस व्यक्ति ने कहा—"आप तशरीफ रखिये। मैं इत्तला करता हूँ।"

"अच्छा!"

वह कालीन पर बैठ गयी। वह दूसरे कमरे में चला गया।

पन्द्रह मिनट के बाद एक युवती ने उस कमरे में प्रवेश किया। सावित्री उसे गौर से देखने लगी। विविध भावों से भरी हुई दृष्टि से दुलारी भी उसकी ओर देखने लगी।

"नमस्ते!" हाथ जोड़कर दुलारी ने कहा।

"नमस्ते!"

सामने बैठकर दुलारी ने कहा—"आप कौन हैं?"

"मैं रामेश्वरनाथ की माँ हूँ।"

"अच्छा! आप उनकी माँ हैं?"

"हाँ!"

"आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई!"

"मुझे खबर मिली है कि रामेश्वर यहाँ आता है!"

"जी हाँ! गाना सुनने की गरज से रामेश्वर बाबू अक्सर यहाँ आ जाते हैं।"

"रामेश्वर मेरा एकलौता बेटा है। उसके सिवाय मेरे और कोई नहीं है। उसे ही देखकर मैं जीती हूँ। बड़े लाड़-प्यार से मैंने उसे पाला है। जन्म भर आराम से रहने के लिये उसके पिता काफी छोड़ गये हैं। ईश्वर की दया से किसी बात की कमी नहीं है। कई साल से कह रही हूँ कि शादी कर ले, लेकिन नहीं मानता। आवारा साथी मिल गये हैं। आवारगी में पड़ गया है।"

दुलारी निस्तब्ध रही।

"उसे सुधारने की मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन मेरी एक नहीं चली।"

"आप उनकी माँ हैं। आपका कहना मानना तो उनका धर्म है।"

"यह तो ठीक है, बेटी! लेकिन अब वह ज़माना नहीं रहा, जब पुत्र अपनी माता की नज़र देखकर चलता था। अब नया ज़माना है, नयी बातें हैं। अब तो हर आदमी अपने मन की करने के लिए आज़ाद है। रामेश्वर से मैं यह सब नहीं चाहती, जो पिछले ज़माने की मातायें अपने पुत्रों से चाहती थीं। बस, मैं उसे सुखी देखना चाहती हूँ। रामेश्वर समझता है कि वह जिस हालत में है, उसमें वह सुखी है। मैं कहती हूँ कि यह उसका भ्रम है। सुख की तलाश में वह इधर उधर भटकता फिरता है। लेकिन सुख क्या दाम देकर खरीदा या दूसरों के आगे हाथ फैलाने से मिल सकता है? मैं तो समझती हूँ कि इस तरह सुख कभी किसी को प्राप्त नहीं हो सकता। सच्चा सुख तो आदमी के अन्दर छिपा है। वह जब चाहे, उसे पा सकता है।"

"सुख है क्या?"

"सुख, मेरे विचार से वह मानसिक अवस्था है, जिसमें आत्मा और मन को शान्ति प्राप्त हो।"

"और शरीर?"

"आत्मा और मन जब सुखी है, तो शरीर भी सुखी है।"

दुलारी गहरे विचारों में डूब गयी। उसकी दशा उस पथिक की सी हो गयी, जिसे सहसा यह बताया गया हो कि जिस मार्ग पर वह चलता आया है, वह उसे उसके निर्दिष्ट स्थान की ओर नहीं ले जा रहा है। सच्चा सुख! आत्मा और मन की शान्ति! ये क्या पहेलियाँ हैं?

"बोलो बेटी, क्या मैं गलत कहती हूँ?"

"आपकी बातें तो मैं पूरी तरह नहीं समझ पायी हूँ, लेकिन मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आपके विचार बिलकुल सत्य हैं।"

"तुम समझना चाहती हो, लेकिन रामेश्वर नहीं समझना चाहता। तुमने सत्य की एक झलक देखी, और उसे पूरी तरह देखना चाहती हो। रामेश्वर उसे देखता है, और आँखें फेर लेता है।"

"ऐसा क्यों है, माताजी ?"

"इसका कारण मेरा दुर्भाग्य है, मेरी कमजोरी है। दुनिया में जो चाहो, वह नहीं होता, जो न चाहो, वह होकर रहता है। यही साधारण नियम है। इस नियम को पलट देना विरलों का ही काम है। इसके लिये असाधारण संयम, त्याग और इच्छा शक्ति की आवश्यकता है। चाहना का मूल्य हर व्यक्ति को चुकाना पड़ता है। मेरा लड़का मेरे हाथ में इसलिये नहीं है कि मैं उसे बेहद प्यार करती हूँ।"

"तब आप ऐसा क्यों करती हैं ?"

"बेटी, मेरे इस हाड़ मांस के शरीर में एक माता का हृदय जो है! माता का हृदय पुत्र के पीछे पागल की तरह घूमता फिरता है। उसे रोक सकने की शक्ति मुझ में नहीं है।"

पहेलियों पर पहेलियाँ! दुलारी की उलझन बढ़ती ही गयी।

"दुलारी! मेरी मदद करोगी ?"

"आपकी मदद! मैं कैसे आपकी मदद कर सकती हूँ ?"

"रामेश्वर का सुधारकर।"

"सुधारकर! आप भूल गयी कि आप एक वेश्या से बातें कर रही हैं ?"

"वेश्या! बेटी, तुम वेश्या ही नहीं, एक सहृदय नारी भी हो। और एक दुखी नारी जब एक दयावती नारी के सामने आँचल पसारती है, तो वह मुँह नहीं मोड़ती।"

"मुँह मोड़ने की बात नहीं है, माताजी। मेरा तो कहना यह है कि जिसने कभी सुधार के मार्ग पर कदम नहीं रखा, वह किसी दूसरे को कैसे सुधार सकता है ?"

"इच्छा कार्य की जननी है ! इच्छा जब प्रयास का हाथ पकड़ कर चलती है, तो ऊँचे से ऊँचे पर्वत के शिखर पर पहुँच सकती है, आकाश में उड़कर तारों को छू सकती है, ईश्वर में लीन हो सकती है !"

"आप ही की तरह मैं भी तो एक दुर्बल नारी हूँ। इतनी ज्ञानवती होकर जब आप अपने को कमजोर समझती हैं, तो मैं कैसे अपने को बलवती मान लूँ ?"

"बेटी ! मेरा नारीत्व कमजोर नहीं है, मातृत्व कमजोर है। नारी को अबला समझनेवाले भयङ्कर भ्रम में हैं। नारी पुरुष की जननी है। प्रकृति को भी तो नारी ही कहते हैं। अखिल ब्रह्माण्ड की रचना करनेवाली महाशक्ति भी तो नारी ही थी। नारी महाशक्ति-सम्पन्ना है। पुरुषों ने अबला कह-कहकर उसे अपने को अबला समझने के लिये बाध्य कर दिया। पुरुषों के हाथ का खिलौना बनकर वह अपने को पहिचान नहीं सकी।"

"तब क्या उसे पुरुषों से घृणा करनी चाहिये ?"

"नहीं। पुरुष के बिना उसका काम नहीं चल सकता। उसे अपने को पहिचानना चाहिये, और पुरुष के हाथ का खिलौना बनने से इन्कार कर देना चाहिये।"

कई क्षणों तक निस्तब्धता रही। नवीन पावन विचारों में खोयी हुई दुलारी निश्चल बैठी रही। तो जीवन का एक ऐसा पहलू भी है, जिसकी ओर उसने कभी दृष्टि नहीं डाली थी, जो आकर्षक है, सत्य है, निर्विकार है !

"बोलो, दुलारी, क्या कहती हो ?"

"आप जो कुछ कहें, करने को तैयार हूँ।"

"धन्यवाद, बेटी ! मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहती, सिर्फ इतना चाहती हूँ कि रामेश्वर जब तुम्हारे पास आये

फटकारो और इस पर भी अगर वह अपनी चाल सुधारने को राजी न हो, तो साफ कह दो कि तुम उससे मिलना नहीं चाहती।"

"बहुत अच्छा!"

"मैं जानती हूँ कि तुम्हें इसके लिए बड़ा त्याग करना पड़ेगा। किन्तु त्याग ही वह अग्नि-परीक्षा है, जिसमें उत्तीर्ण होने पर हम नारियों का नारीत्व खरे सोने की भाँति चमक उठता है। अब मैं यहाँ रुककर तुम्हारा समय बरबाद न करूँगी।" सावित्री उठ खड़ी हुई।

तुरन्त उठकर, मुस्कराकर, दुलारी ने कहा—"आपका समय भले ही बरबाद हो, किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ आकर आपने मेरा बड़ा उपकार किया है।"

"मैं फिर आऊँगी, बेटी!" दुलारी को हृदय से लगाकर, उसने सिर पर हाथ फेरकर, पीठ पर थपकियाँ देकर, वह चली गई।

विचित्र अनुभूतियों के रस में डूबी हुई दुलारी मूर्तिवत् खड़ी रह गई।

× × ×

अपने शयनागार में जाकर, पलंग पर लेटकर, दुलारी छत की ओर ताकने लगी। सावित्री की बातें सुनकर नवीन विचारों की जो धारा उसके मस्तिष्क में प्रवाहित हो गई थी, उसी में वह बह रही थी। क्या वह वास्तव में सुखी है? मर्द आते हैं, उसकी खुशामद करते हैं, तारीफ के पुल बाँधते हैं, धन भेंट करते हैं, और तृप्त होकर चले जाते हैं। अच्छे से अच्छे वस्त्र, अच्छे से अच्छे खाने उसके लिए हाजिर रहते हैं। किन्तु खुशामद की बातें सुनकर, अच्छे कपड़े पहिनकर, अच्छे खाने खाकर, क्या वह सुखी है? मर्दों के इशारे पर क्या उसे कठ-पुतली की तरह नाचना नहीं पड़ता? उनकी अप्रिय बातें सुनकर, उनसे अनिच्छित व्यवहार पाकर क्या उसे खून के घूँट नहीं पी जाने पड़ते? जो कुछ उसके पास है, उससे क्या वह संतुष्ट रहती है? 'और-और'

"अच्छा बाबा, न उठो। मुझे क्या करना है! नुकसान होगा, तो तुम्हारा। मेरा क्या जायगा!"

"होने दो। जाओ तुम यहाँ से।"

मुँह बनाये हुए, मन ही मन बड़बड़ाती हुई नायिका चली गई। दुलारी फिर अपने विचारों में तल्लीन हो गई।

शाम हो गयी, लेकिन वह ज्यों की त्यों पड़ी रही। एक मीरासी आया।

"बाईजी!"

"कहो।"

"सेठजी आये हैं।"

"कह दो कि मेरी तबीअत अच्छी नहीं है।"

"बहुत अच्छा।" वह चला गया।

भारी भरकम शरीर है। अनाज से भरे हुए भारी बोरे की तरह तोंद है। हमेशा नाक में दम किये रहता है। लेकिन ऐयाशी के बिना चैन नहीं। उसकी बातें सुनकर, भाव भंगी देखकर मन घृणा से भर जाता है। केवल पैसे के लिए, अपना मनोभाव दाबकर, ऐसे व्यक्ति को खुश करना। कैसी ओछी है यह बात!

मीरासी फिर आया। उसने उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

"सेठजी पूछते हैं कि क्या तकलीफ है? डाक्टर बुलाया जाय?"

"उनसे कह दो कि मुझे डाक्टर की जरूरत नहीं है। अगर जरूरत होगी, तो मैं खुद बुलवा लूँगी। तशरीफ ले जायँ। सारा बाजार पड़ा है, कहीं और अड्डा जमायें।"

मीरासी चुपचाप चला गया।

कई अन्य ग्राहक आये और निराश होकर वापस गये।

दस बजे के करीब फिर एक मीरासी आया।

"रामेश्वर बाबू आये हैं।"

"रहो, दुलारी, अब तुम्हें पढ़ना नहीं है।"

"क्यों?"

"इस तरह तो तुम मिल नहीं सकतीं।"

"म! अब तुम अच्छा नहीं चाहते, मुझे चाहते हो!"

"सच्चे दिल से तुम्हें चाहता हूँ।"

"इनकार मंजूर!"

"कहो तो इसी समय तुम्हारे सामने [illegible] जाता हूँ।"

"नहीं, तुम्हारी जान लेकर मैं तुम्हारा इन्तजार करना नहीं चाहती। एक शर्त रखती है।"

"तब उसी से काम लो।"

"तैयार हो?"

"पूरी तरह।"

"तुम कुछ भूल जाओ। समझ लो कि मैं मर गयी।"

"ऊँ! ऊँ! यह क्या कह रही हो, दुलारी?"

"शराब का साथ छोड़ दो। इस नरक-कुण्ड की तरफ कदम मत उठाओ।"

"यानी महात्मा बन जाऊँ?"

"महात्मा बनना हर आदमी के भाग्य में नहीं होता। लेकिन एक शरीफ और इज्जतदार आदमी की तरह भी तो रहा जा सकता है।"

"जिन बातों से मेरे दिल को खुशी होती है उन्हें छोड़ देना कैसे मुमकिन है? 'जिन्दगी खाने-पीने और खुश रहने के लिए है।'"

"जिन्दगी नीचे गिरने के लिए नहीं, ऊपर उठने के लिए है। जिसे तुम खुशी समझते हो, वह झूठी खुशी है। वह ऐसा जहर है, जिसका जायका मीठा है। मतलब तुम इधर उधर भटक रहे हो। क्या तुम्हारी आत्मा शान्त है, मन शान्त है?"

"आत्मा और मन! अरे, अब तो तुम मेरी माँ की तरह बातें करने लगीं! अब हो चुका।" तुरन्त जेब से बोतल निकालकर, वह काग खोलने लगा।

"रहने दो, बहुत काफी पी चुके हो।"

"अब क्या शराब पर भी रोक लगाओगी ?"

"रोक लगानेवाली मैं कौन होती हूँ ? लेकिन, तुम खुद इम्तहान देने के लिए राजी हुए हो ?"

"यह तो ठीक है।" उसने बोतल फिर जेब में रख ली।

फर्श की ओर ताकता हुआ वह कई क्षणों तक निस्तब्ध खड़ा रहा, फिर दरवाजे की ओर बढ़ा।

"कहाँ जा रहे हो ?"

"जहाँ अल्लाह मियाँ के दिये हुये यह दो पैर ले जायँ।"

"और इम्तहान ?"

"बड़ा धन्ना है तुम्हारा इम्तहान !"

"कोशिश तो करोगे ?"

"करूँगा। लेकिन ।"

"लेकिन क्या ?"

"कुछ नहीं। सलाम।"

"खुश रहो !"

यह कहा लगाकर वह चला गया।

× × ×

सड़क पर पहुँचकर, रामेश्वर गम्भीर विचारों में खोया हुआ इधर-उधर टहलने लगा। अब तो घर, बाहर एक ही सी बातें सुनने को मिलने लगी। क्या हो गया है दुलारी को ? सनक गयी है क्या ? जरूर सनक गयी है वह। माँ भी सनक गयी, दुलारी भी सनक गयी। अब कहाँ ठिकाना मिलेगा उसे ? जिन्दगी के मजे छोड़ दो, यह करो, वह करो। यह सब हो सकेगा उससे ? आह ! बड़ा कठिन काम है यह। जेब से बोतल निकालकर, काग खोलकर, वह बाकी बची हुई शराब पी गया। खाली एक ओर फेंककर, सिगरेट जलाकर व

टहलने लगा। दूसरा ब्याह! नहीं, नहीं। सारे बच्चे उसके देखे हुए हैं। कहीं दूसरी जगह कभी उसकी तबीयत नहीं लगी। दुलारी को छोड़कर वह किसी दूसरी स्त्री को प्यार नहीं कर सकता। तब! अजब परेशानी है!

सामने का रास्ता एक पार्क की ओर जाता था। वह तेजी से आगे बढ़ा।

पार्क में पहुँचकर वह बेंच पर लेट गया। 'जिसे तुम खुशी समझते हो, वह झूठी खुशी है!' 'क्या तुम्हारी आत्मा शान्त है, मन शान्त है?' अजब गुलगुम्म की बातें हैं! उसकी खुशी सच्ची खुशी नहीं है, तो सच्ची खुशी है क्या बला! ठीक ऐसी ही बातें माँ भी कहती रहती है। उसकी गहरी बातें वह कभी समझ नहीं सका। सचमुच क्या दोनों सनक गयी हैं? लेकिन इस तरह की बातें करने के अलावा तो कोई दूसरी सनक की बात उन दोनों में दिखाई नहीं देती। तो क्या वह स्वयं भ्रम में है? जीवन के जिस सिद्धान्त के सहारे अब तक वह चलता आया है, क्या वह गलत है?

बड़ी देर तक वह पड़ा रहा, फिर उठकर टहलने लगा। उसका आन्दोलित मन किसी तरह शान्त न हुआ। वह फिर चौक की ओर चला।

एक गली में पहुँचकर उसने एक घर का दरवाजा खटखटाया।

"कौन है?"

"दरवाजा खोलिये, पण्डितजी!"

"अच्छा, आता हूँ!"

दो मिनट के बाद दरवाजा खुला।

"अरे साहब! आप हैं! कहिये?"

"एक बोतल 'व्हाइट हॉर्स' चाहिये!"

"अब इस वक्त?"

"गोदाम तो यहीं है, दे दीजिये।"

"दुगनी कीमत लगेगी, जनाब।"

"ऐसा गजब न कीजिये। मैं तो आपका रोज का ग्राहक हूँ।"

"अच्छा, ड्योढ़ी सही।"

"अच्छा साहब, जो कुछ चाहिये ले लीजिये।"

"अन्दर आइये, अभी देता हूँ।"

अन्दर जाकर वह बैठक में बैठ गया। पण्डितजी चले गये।

दस मिनट के बाद पण्डितजी बोतल लेकर वापस आये। दाम देकर, बोतल बगल में दाबकर, उस घर से निकलकर, वह फिर एक ओर चल पड़ा। कई गलियाँ और सड़कें पार करने के बाद एक गली में पहुँचकर उसने फिर दरवाजा खटखटाया।

"जुगुल! ओ जुगुल! दरवाजा खोलो, भाई।"

"आता हूँ, रामेश्वर! ठहरो।"

एक मिनट में दरवाजा खुला।

"आपने तो खूब इन्तजार कराया, जनाब!"

"भागा चला तो आ रहा हूँ।"

"शामके वक्त आने का वादा किया था, और आये हो इस वक्त! तुम्हारी वजह से कहीं जा नहीं सका।"

"मुझे बड़ा अफसोस है, यार!"

"बगल में क्या है?"

"वही जिसकी तुम्हें प्यास है।"

"ही ही-ही! आओ, आओ।"

दोनों भीतर गये, दरवाजा बन्द हो गया।

दोनों ऊपर बैठक में पहुँचे। बोतल खुली। दौर चलने लगे।

"अब यह बताओ कि अभी तक कहाँ थे?"

"एक अजीब मरामसे में फँसा था।"

"बोलो, अम्माँ, क्या कहती हो ?"

"विचार कर लूँ, तो बताऊँ।"

"विचार करने की इसमें कौन-सी बात है ?"

"क्या बताऊँ तुम्हें ? तुम तो ...!"

तैश में आकर, उठकर वह चला गया।

× × ×

दिन भर वह गायब रहा। दो बजे रात के समय उसके दो साथी उसे घर पहुँचा गये। उस समय वह नशे में बेहोश था।

सबेरे उसे तेज बुखार चढ़ आया। तुरन्त डाक्टर बुलाया गया। डाक्टर आया, रोगी की परीक्षा की। नुसखा लिखकर उसने सावित्री से कहा—"रोगी को कोई प्रबल मानसिक दुःख है। जिस बात से वह खुश होता हो, वह आपको करनी चाहिये।

"कोई खतरा तो नहीं है ?"

"खतरे की तो अभी कोई बात नहीं है, लेकिन बड़ी सावधानी रखने की जरूरत है।" फीस लेकर वह चला गया।

रह-रहकर रामेश्वर बेहोश हो जाता था। बेहोशी की हालत में आय-बाँय बकता था। 'दुलारी! दुलारी!' चिल्ला उठता था। सावित्री के दुःख का पारावार न था।

दोपहर के समय वह दुलारी के घर गयी। उस समय उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

"क्या बात है, माताजी ?"

"रामेश्वर की तबीअत बहुत खराब है। तुम्हारे नाम की वह रट लगाये हुए है। जल्दी चलो, बेटी।"

"चलिये।"

पाँच मिनट में वह तैयार हो गयी। गाड़ी बाहर खड़ी थी। दोनों ... हुई। गाड़ी हवा से बातें करने लगी।

रामेश्वर ने आँखें खोलीं। रोग-शय्या के समीप एक कुरसी पर दुलारी बैठी हुई थी। उसकी ओर देखकर, किञ्चित् मुस्कराकर, उसने कहा—"आ गयीं, दुलारी?"

"हाँ।"

"कैसे आयीं?"

"माताजी बुलाने गयी थीं। अब तबीअत कैसी है?"

"अब मैं नहीं बचूँगा, दुलारी!"

"कैसी बातें करते हो? बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे।"

वह निस्तब्ध रहा।

"दुलारी!"

"हाँ!"

"मेरी एक बात मानोगी?"

"कहो!"

"तुम जो कुछ कहोगी, करूँगा, मेरे पास से अब कहीं न जाना।"

"अच्छा! ज्यादा बातें न करो, डाक्टर ने मना किया है।"

रामेश्वर ने आँखें बन्द कर लीं।

थोड़ी देर के बाद दुलारी को ड्राइंग-रूम में ले जाकर, सावित्री ने कहा—'बेटी! उस दिन तुमसे एक अनुरोध कर चुकी हूँ, आज दूसरा करना चाहती हूँ?',

"कहिये! आपकी आज्ञा मैं कभी न टालूँगी।"

"अब तुम यहाँ से कहीं न जाओ।"

दुलारी निस्तब्ध रही।

"मैं चाहती हूँ कि तुम रामेश्वर के साथ शादी कर लो।"

"लेकिन, उस दिन तो आपने मुझसे कहा था कि स्त्री को पुरुष का खिलौना न बनना चाहिये।

"और डाक्टर ने भी तो कहा था कि पुत्र के बिना स्त्री का काम नहीं चल सकता। फिर तुम्हारी उम्र भी अभी बहुत थोड़ी है।"

"आखिर! बड़ी बदनामी होगी।

"मुझे बदनामी की कोई परवाह नहीं है, बेटा! मैं तो रामेश्वर को सुखी देखना चाहती हूँ। तुम्हारे सिवाय उसे और कोई सुख नहीं दे सकता। और मैं भी एक सुन्दर-सी, अच्छी-सी बहू पा जाऊँगी।"

घुटनों के बल बैठकर, दुलारी ने सावित्री के पैरों पर सिर रख दिया। उसने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया।

रामेश्वर का रोग बड़ी तेज़ी से घटने लगा। दूसरे दिन डाक्टर ने परीक्षा करने के बाद कहा—'अब आप कल तक चंगे हो जायँगे।'

डाक्टर के जाने पर सावित्री ने रामेश्वर से कहा—'दुलारी राजी हो गयी है, बेटा। शादी का इन्तज़ाम कर रही हूँ।"

प्रसन्न होकर, मुस्कराकर रामेश्वर बोला—"आखिर मेरी ही बात रही न, अम्माँ?'

"तुम्हारी जिद के सामने किसी की क्या चल सकती है? हर तरह, तुम्हारी तो जीत ही जीत है।"

रामेश्वर हँस पड़ा। दुलारी सिर झुकाकर मुस्कराने लगी।

भाग्य-चक्र

नौकरी न मिलना इतना बुरा नहीं होता, जितना लगी हुई नौकरी का छूट जाना। उस दिन के साधारण-से झगड़े के कारण, बड़े बाबू की शिकायत पर, कम्पनी के मालिकों की ओर से जब रमेशचन्द्र को पदच्युत किए जाने की सूचना प्राप्त हुई, तो वह विविध भावों से आन्दोलित हो उठा। उन भावों में भय का भाव भी सम्मिलित था। अब कहीं नौकरी न मिली तो क्या होगा? उसके स्वाभिमान ने कहा, जहाँ आदर नहीं है, न्याय नहीं है, ऐसी जगह जाकर सिर झुकाने और गिड़गिड़ाने से मर जाना ज्यादा अच्छा है—यहीं प्रयास है, यहीं सफलता है! साहस ने समर्थन किया। बस, उसने कुछ न करने का निश्चय कर लिया। उसने दफ्तर जाना बन्द कर दिया, उस सूचना का कोई उत्तर भी नहीं दिया। दफ्तर का चपरासी एक दिन बाकी दिनों का मासवाह दे गया। जीविका की समस्या विकट रूप धारण कर सामने आ उपस्थित हुई।

शहर का कोई दफ्तर, कोई कारखाना ऐसा नहीं बचा जहाँ वह गया न हो, लेकिन हर जगह एक ही उत्तर मिला, 'कोई जगह खाली नहीं है।' समाचार-पत्रों में निकलने वाले विज्ञापन देख-देखकर, उसने और प्रार्थना-पत्र भेजे, किन्तु कहीं सफलता नहीं मिली। उसके नैराश्य की सीमा न थी।

दो-तीन मास में ही उसकी दुनिया तंग हो गई। किफायत से चलना तो उसने सीखा ही न था। पहले की जमा की हुई कोई रकम पास न थी। दफ्तर से जो छोटी-सी रकम मिली थी वह चार छः रोज़ ही में समाप्त हो गई। ऋण का बोझ ऊपर लद गया। मकान का

किराया चढ़ गया, दूकानदारों का पावना, नौकर का वेतन ! तकाज़े पर तकाज़े आने लगे। एक चचेरे भाई के अतिरिक्त उसके कोई न था, और वह भी सदा खिंचा ही रहता था। मुसीबत के समय रिश्तेदार कब किसी का साथ देते हैं ? और एक हीरालाल को छोड़कर, अन्य मित्रों की नज़रें भी बदल गईं।

एक दूकानदार ने आज उसे बहुत परेशान किया। नौकरों को भगते भगते तंग आकर वह खुद तकाज़ा करने आया। रमेश ने टाल मटूल किया। बस, झगड़ा हो गया। एक घंटे की बकझक के बाद वह किसी तरह टला। नौकरों ने काम करना छोड़ दिया था। घर कूड़ा-करकट से भर गया था। आज कुछ खाने को भी न था। अब इस झगड़ालू दूकानदार को देने के लिए कहाँ से रुपए लाये जायँ ? चिन्ताओं से घिरा हुआ, मनोवेदना का विकट भार हृदय पर लिये हुए, वह चारपाई पर जा लेटा। हीरालाल ? उसे तंग करना क्या ठीक है ? कई बार तो वह रुपए दे चुका है। इस तरह बराबर सहायता की याचना करने से कहीं उसका रंग भी बदल गया, तो ! नहीं, नहीं, वह कभी रंग न बदलेगा। वह सच्चा मित्र है। किन्तु बार-बार किसी के सामने हाथ फैलाना क्या उचित है ? विकल विचारों में फँसा हुआ वह दिन भर पड़ा रहा।

संध्या के समय वह हीरालाल के घर गया। अपनी बैठक में एक आरामकुरसी पर लेटा हुआ हीरालाल समाचार-पत्र पढ़ रहा था।

"जय रामजी की !"

"जय रामजी की !" अखबार हटाकर हीरालाल ने कहा। "आओ, बैठो, रमेश !"

रमेश एक कुरसी पर बैठ गया।

"कहो, कहाँ सिलसिला लगा ?"

"अभी तो कहीं नहीं।"

"बड़े अफसोस की बात है। मुसीबत जब एक बार आ जाती है, तो आसानी से नहीं टल सकती। खैर, देखो, इसमें एक विज्ञापन है। यहाँ भी अर्ज़ी भेज दो।'

उत्सुकता से समाचार-पत्र लेकर, रमेश वह विज्ञापन पढ़ने लगा। हीरालाल उठ खड़ा हुआ।

"तुम्हें जल्दी तो नहीं है?"

"नहीं, कोई जल्दी नहीं है।"

"तो मैं ज़रा स्नान कर आऊँ। तब तक तुम अखबार देखो।"

"अच्छा।"

हीरालाल भीतर चला गया। रमेश फिर विज्ञापन देखने लगा। एक कम्पनी को एक क्लर्क की आवश्यकता थी। वेतन भी बुरा न था—४०) प्रति मास। कल ही प्रार्थना पत्र भेज देना चाहिए? ज़रूर, भेजना चाहिए। यदि यह जगह मिल गई, तो तकलीफ काफी दूर हो जायगी।

सहसा उसकी दृष्टि सामने के छोटे कमरे की ओर गई। उसका दरवाज़ा खुला हुआ था। उसके अन्दर उस दीवार से लगे हुए कई ट्रंक रक्खे हुए थे। उनमें बादामी रंगवाला वह ट्रंक भी था, जिसमें से निकाल कर कई बार हीरा ने उसे रुपए दिए थे। बड़ा भाग्यवान है हीरा! लड़कपन से वह देखता आ रहा है, कभी आर्थिक कष्ट उसे नहीं हुआ। इस समय भी ठीकेदारी करता है, और खूब माल काटता है। काश ऐसा साधन उसके पास भी होता, तो कितना सुखमय होता उसका जीवन!

उस कमरे से हटकर, चित्रों से सज्जित दीवारों पर घूमती हुई उसकी दृष्टि मेज़ पर आकर रुक गई। कलमदान के सामने पड़े हुए पैड पर चाभियों का गुच्छा पड़ा हुआ था। गुच्छे में वह पीली चाभी भी था, जो उस ट्रंक में लगे हुए ताले को खोलती थी। 'उ

अच्छा मौका है ! [illegible] ! नहीं, नहीं, [illegible] है कि [illegible] में ही सकता। किन्तु यदि [illegible] इस समय [illegible] न करे, तो [illegible] मौ[illegible] मिलता [illegible] इतना [illegible] के साथ [illegible] है [illegible] [illegible] का ही इस समय [illegible] है। [illegible] पर [illegible] पछताना [illegible] हाथ लगा। [illegible] का [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] पर [illegible] हुआ। [illegible], [illegible] नहीं, [illegible] [illegible]। [illegible] पर [illegible]। [illegible] है, तो [illegible] [illegible] किन्तु, [illegible], तो [illegible], [illegible] [illegible]। और [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] कम नहीं लगता। [illegible] मौका [illegible] गया, तो [illegible]। इस तरह [illegible] करने में [illegible] न [illegible]। [illegible] से [illegible] पर [illegible] करना [illegible] का [illegible] करना है। बस, [illegible], [illegible] चूकना न चाहिए।'

[illegible] ऊपर हटाकर, वह उठा, चाभियों का गुच्छा उठाया और [illegible] में घुस आया। उसका हृदय [illegible] से धड़क रहा था, शरीर काँप रहा था, किन्तु [illegible] चेहरे पर [illegible] [illegible] की छाया थी। [illegible] के सामने [illegible] बैठकर, उसने [illegible] में कुंजी लगाई। बड़ी आसानी से ताला खुल गया। [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] देखने लगा। [illegible] कपड़ों के नीचे [illegible] का [illegible]। [illegible] ने [illegible] का एक बंडल या और [illegible]। प्रसन्नता से उसकी आँखें चमकने लगीं। [illegible] का बंडल उठाकर उसने अपनी [illegible] में रख लिया, फिर [illegible] बन्द [illegible] कपड़े [illegible] [illegible] दिए। [illegible] बन्द कर, ताला लगाकर, उठकर, वह कमरे से बाहर निकला। गुच्छा [illegible] पर रखकर, अखबार लेकर, वह कुरसी

पर बैठ गया, और पढ़ने की कोशिश करने लगा। पंक्तियाँ नाच उठीं, पढ़ने का प्रयत्न निष्फल हुआ। 'अब क्या करना चाहिए? नहीं, नहीं, भागने से मामला चौपट हो जायगा। किंतु, हीरा का सामना कैसे करना होगा? वैसे ही साहस के साथ जैसे अभी यह भयङ्कर काम किया था। काम बन गया, सारी परेशानी अब दूर हो जायगी? किंतु, यह दुष्कृत्य? भ्रम मात्र है गुण अवगुण का विचार। कितने रुपये हैं? कितने भी हों, काफी हैं। अभी देखने का मौका नहीं है।

हीरालाल आ पहुँचा। रमेश का हृदय फिर वेग से धड़कने लगा। अखबार में मुख छिपाए हुए वह बैठा रहा।

"विज्ञापन पढ़ा, रमेश!"

"हाँ!" अखबार कुछ हटाकर सामने की ताकते हुए उसने उत्तर दिया।

"अर्जी भेजोगे?"

"ज़रूर भेजूँगा!" जबान की लड़खड़ाहट रोकते हुए उसने कहा।

एक सिगरेट जलाकर हीरा ने सिगरेट का पैकट और दियासलाई का बक्स रमेश के हाथ में दे दिया। अखबार फर्श पर एक ओर रखकर, सिगरेट जलाकर, उठकर, सिगरेट का पैकट और दियासलाई का बक्स मेज पर रखकर वह बोला—"अब इजाजत दो, हीरा!"

"क्यों? बैठो न!"

"नहीं, अब जाऊँगा। एक जगह जाना है। अर्जी भी लिखना है। जय रामजी की!"

"जय रामजी की!"

उस घर से बाहर निकलकर, शान्ति की साँस लेकर, वह तेज़ी से अपने घर की ओर चला।

× × ×

घर पहुँचकर, भीतर से दरवाज़ा बन्द करके, वह सीधे शयनागार में गया और चारपाई पर लेटकर, जेब में नोटों का बंडल

माधवाजी ने इधर-उधर देखकर, धीरे उठ, चाबियों का गुच्छा उठाया और तेजी से उस कमरे में घुस आया। उसका हृदय धक्, से धड़क रहा था, शरीर काँप रहा था, किन्तु उसके चेहरे पर निश्चय झलक सी आती थी। उस ट्रंक के सामने फर्श पर बैठकर उसने ताले में कुंजी लगाई। बड़ी आसानी से ताला खुल गया। तब, ढक्कन दूर हटाकर, वह देखने लगा। वह कपड़ों के नीचे नोटबुक का एक बक्स। बक्स में नोटों का एक बण्डल था और कुछ रुपए। प्रसन्नता से उसकी आँखें चमकने लगीं। नोटों का बण्डल उठाकर उसने अपनी भीतरी जेब में रख लिया, फिर बक्सा बन्द करके कपड़े ज्यों के त्यों सजा दिए। ट्रंक बन्द कर, ताला लगाकर, उठकर, वह कमरे से बाहर निकला। गुच्छा पेड़ पर रखकर, अखबार लेकर, वह कुर्सी

पर बैठ गया, और पढ़ने की कोशिश करने लगा। पंक्तियाँ नाच उठीं, पढ़ने का प्रयत्न निष्फल हुआ। 'अब क्या करना चाहिए? नहीं, नहीं, भागने से मामला चौपट हो जायगा। किन्तु, हीरा का सामना कैसे करना होगा? वैसे ही साहस के साथ जैसे अभी यह भयंकर काम किया था। काम बन गया, सारी परेशानी अब दूर हो जायगी? किन्तु, यह दुष्कृत्य? भ्रम मात्र है गुण अवगुण का विचार। जितने रुपये हैं? जितने भी हों, काफी हैं। अभी देखने का मौका नहीं है।

हीरालाल आ पहुँचा। रमेश का हृदय फिर वेग से धड़कने लगा। अखबार में मुँह छिपाए हुए वह बैठा रहा।

"विज्ञापन पढ़ा, रमेश?"

"हाँ!" अखबार कुछ हटाकर सामने को ताकते हुए उसने उत्तर दिया।

"अर्जी भेजोगे?"

"ज़रूर भेजूँगा।" ज़बान की लड़खड़ाहट रोकते हुए उसने कहा।

एक सिगरेट जलाकर हीरा ने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स रमेश के हाथ में दे दिया। अखबार फर्श पर एक ओर रखकर, सिगरेट जलाकर, उठकर, सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स मेज़ पर रखकर वह बोला—"अब इजाज़त दो, हीरा?"

"क्यों? बैठो न।"

"नहीं, अब आऊँगा। एक जगह जाना है। अर्जी भी लिखनी है। जय रामजी की!"

"जय रामजी की!"

उस घर से बाहर निकलकर, शान्ति की साँस लेकर, वह तेज़ी से अपने घर की ओर चला।

× × ×

घर पहुँचकर, भीतर से दरवाज़ा बन्द करके, वह सीधे शयनागार में गया और चारपाई पर लेटकर, जेब से नोटों का बंडल

अच्छा मौका है ! अगर [illegible] होगा, नहीं, ऐसा दुष्कर्म उससे न हो सकेगा। किन्तु यदि मैं इस समय साहस न करूँ, तो ? देगा भी, तो कितना दे देगा ? साहस तथा दृढ़ता के साथ सुयोग से लाभ उठानेवाले ही इस संसार में चालाक होते हैं। इस स्वर्ण अवसर पर चूक जाने से फिर पछताना ही हाथ रहेगा। पाप पुण्य का विचार करना भ्रम मात्र है। सचाई और ईमानदारी के मार्ग पर अभी तक चलने से क्या प्राप्त हुआ ? अपमान, आश्रयहीनता ! नहीं, ऐसा हो नहीं। अवगुणों के पथ पर चलने में ही यदि सुख है, तो वह क्यों सुख से वंचित रहे ? किन्तु, यदि पकड़ा गया, तो ? नहीं, अभी वे न आ सकेंगे। शौच से निवृत्त होने, मुँह की सफाई करने और स्नान करने में उन्हें घंटे से कम नहीं लगता। रहा नौकर ही वह। गया, तो ? देखा जायेगा तब। इस तरह आगा पीछा करने से काम न चलेगा। साहस से काम लेने के अवसर पर कायरता प्रकट करना अपने पुरुषार्थ को अपमानित करना है। बस, बस, अब चूकना न चाहिए।'

सावधानी से इधर उधर देखकर, वह उठा, चाबियों का गुच्छा उठाया और तेजी से उस कमरे में घुस आया। उसका हृदय वेग से धड़क रहा था, शरीर काँप रहा था, किन्तु उसके चेहरे पर विकट संकल्प की छाया थी। उस ट्रंक के सामने फर्श पर बैठकर, उसने ताले में कुञ्जी लगाई। बड़ी आसानी से ताला खुल गया। तब, तुरन्त ट्रंक खोलकर, वह देखने लगा। कई कपड़ों के नीचे कार्डबोर्ड का एक बक्स। बक्स में नोटों का एक बंडल था और कई रुपए। प्रसन्नता से उसकी आँखें चमकने लगीं। नोटों का बंडल उठाकर उसने अपनी भीतरी जेब में रख लिया, फिर बक्स बन्द करके कपड़े ज्यों के त्यों सजा दिए। ट्रंक बन्द कर, ताला लगाकर, उठकर, वह कमरे से बाहर निकला। गुच्छा मेज पर रखकर, अखबार लेकर, वह कुर्सी

पर बैठ गया, और पढ़ने की कोशिश करने लगा। पत्तियाँ नाच उठी, पढ़ने का प्रयत्न निष्फल हुआ। 'अब क्या करना चाहिए ? नहीं, नहीं, भागने से मामला चौपट हो जायगा। किन्तु, हीरा का सामना कैसे करना होगा ? वैसे ही साहस के साथ जैसे अभी यह भयंकर काम किया था। काम बन गया, सारी परेशानी अब दूर हो जायगी ? किन्तु, यह दुष्कृत्य ? भ्रम मात्र है गुण-अवगुण का विचार। कितने रुपये हैं ? जितने भी हों, काफी हैं। अभी देखने का मौका नहीं है।

हीरालाल आ पहुंचा। रमेश का हृदय फिर वेग से धड़कने लगा। अखबार में मुख छिपाए हुए वह बैठा रहा।

"विज्ञापन पढ़ा, रमेश ?"

"हाँ।" अखबार कुछ हटाकर सामने का ताकते हुए उसने उत्तर दिया।

"अर्जी भेजोगे ?"

"जरूर भेजूँगा।" जबान की लड़खड़ाहट रोकते हुए उसने कहा।

एक सिगरेट जलाकर हीरा ने सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स रमेश के हाथ में दे दिया। अखबार फर्श पर एक ओर रखकर, सिगरेट जलाकर, उठकर, सिगरेट का पैकेट और दियासलाई का बक्स मेज पर रखकर वह बोला—"अब इजाजत दो, हीरा ?"

"क्यों ? बैठो न।"

"नहीं, फिर आऊँगा। एक जगह जाना है। अर्जी भी लिखनी है। जय रामजी की।"

"जय रामजी की।"

उस घर से बाहर निकलकर, शान्ति की साँस लेकर, वह तेजी से अपने घर की ओर चला।

× × ×

घर पहुँचकर, भीतर से दरवाजा बन्द करके, वह सीधे [illegible] गार में गया [illegible] चारपाई पर लेटकर, जेब से नोटों [illegible]

निकालकर, नोट गिनने लगा। दस-दस हज़ार के पाँच-पाँच नोट थे। इतनी बड़ी रकम या सुबह में मिल गई। वाह! छः महीने तक कहीं नौकरी करने पर भी शायद इतना रुपया न मिलता। अगर सुबह होने के बाद भी यह रकम बच रहेगी, यह छः महीने तक निश्चिन्त हो रहने के लिए काफ़ी होगा। चिन्ताएँ अब किसी दूसरे आदमी का दरवाजा खटखटाएँ, यहाँ तो अब चैन ही चैन है। वाह! वाह! किन्तु कितना अधर्म कर्म के द्वारा प्राप्त हुआ है यह धन! अधर्म का! मिथ्या है यह विचार। हीरालाल ने क्या सचाई और ईमानदारी ही से यह धन प्राप्त किया होगा? सब जानते हैं कि जहाँ दो चार या हजार होता है वहाँ वे लोग सब तरह वसूल करते हैं। इतना अनुचित लाभ उठाना क्या अधर्म कर्म नहीं है? एक व्यक्ति है, जो भूखा है, जो हालत में है, भूख के मारे मर रहा है, जीविका का निर्वाह का कोई साधन नहीं है, वह अनुचित ढंग से कुछ धन प्राप्त कर लेता है, दूसरा व्यक्ति है, जो खुशहाल है, जिसके धन की किसी प्रकार कमी नहीं है, वह उचित के साथ ही अनुचित लाभ भी उठाता रहता है। एक का कर्म यदि अधर्म है, तो दूसरे के कर्म का यह अंश अधर्म क्यों नहीं है, जिसका आधार अनौचित्य है? बात साफ़ यह है कि हमारी नैतिक धारणाएँ अन्ध-विश्वास तथा तर्कहीन विचारों पर आधारित हैं। इन धारणाओं के अनुसार चलकर क्या मिलेगा? पग-पग पर ठोकरें, दुःख, जलन, पतन, और अन्त! नहीं, नहीं, उसे तो सुख चाहिए, निश्चय सुख—सांसारिक सुख!

हीरालाल को यदि उसके ऊपर शक हुआ, तो? शक हो जायगा, तो क्या होगा? शक तो सबूत नहीं है। उसके पास सबूत ही क्या है? जो कुछ है, कुछ नहीं के बराबर है। सबसे बड़ा सबूत तो यहाँ मौजूद है। और इस सबूत पर हीरा क्या, किसी की पहुँच हो सकना असम्भव है। इस सबूत को ऐसी जगह छिपा देना चाहिए, जहाँ कोई इसका पता न पा सके।

नोट समेटकर, उठकर, नोटों को एक टीन के डिब्बे में बन्द कर, लालटेन जला कर, एक करछुली लेकर, वह उस कमरे में गया जिस में जिंस रक्खी जाती थी। उस कमरे का कच्चा फ़र्श जगह जगह उखड़ा था। एक स्थान पर बैठकर वह करछुली से ज़मीन खोदने लगा। थोड़ी देर में एक छोटा-सा गड्ढा तैयार हो गया। उस गड्ढे में डिब्बे को रखकर, मिट्टी डालकर, उसने ज़मीन बराबर कर दी। फिर एक बड़ा घड़ा लाकर उस स्थान पर रख दिया, बड़े घड़े पर दो छोटे घड़े रख दिए, और उसके अगल-बगल भी उसने कई घड़े सजा दिए। अब भला, कोई क्या खा के उस सबूत का पता लगा सकेगा! उसकी बाछें खिल गईं। करछुली और लालटेन लेकर, वह उस कमरे से मुस्कराता हुआ बाहर निकला। अब मज़े से बैठो, और चैन की बंशी बजाओ।

रसोई-घर में करछुली रखकर, वह शयनागार में गया, लालटेन एक ओर फ़र्श पर रख दी, कोट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया और जूते उतारकर बिस्तर पर लेट गया। अब क्या करना होगा? आगामी कार्यक्रम पर विचार करता हुआ, वह बड़ी देर तक पड़ा रहा।

सहसा किसी ने घर के बाहर से आवाज़ लगाई—"रमेश बाबू! रमेश बाबू!"

यह तो हीरालाल की आवाज़ है! ग़ज़ब हो गया! अब क्या करना चाहिए?

"रमेश बाबू! रमेश बाबू!"

ख़ामोश रहना क्या अब उचित है? नहीं, नहीं, चलकर दरवाज़ा खोलना और साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए।

सदर दरवाज़े की साँकल ज़ोर से खड़खड़ा उठी। सहम कर, वह चारपाई से उतरा।

"रमेश! ओ रमेश!"

निकालकर, नोट गिनने लगा। दस-दस रुपए के चौवालीस नोट थे। इतनी बड़ी रकम यों मुफ़्त में मिल गई। वाह! छः महीने तक कहीं नौकरी करने पर भी शायद इतने रुपए न मिलते। ऋण चुका देने के बाद भी जो रकम बच रहेगी, वह छः महीने तक किफायत से रहने के लिए काफ़ी होगी। चिन्ताएँ अब किसी दूसरे आदमी का दरवाज़ा खटखटायें, यहाँ तो अब चैन ही चैन है। वाह! वाह! किन्तु कितने जघन्य कर्म के द्वारा प्राप्त हुआ है यह धन! जघन्य कर्म! मिथ्या है यह विचार। हीरालाल ने क्या सचाई और ईमानदारी ही से यह धन प्राप्त किया होगा? सब जानते हैं कि जहाँ दो रुपए का ख़र्च होता है वहाँ वे लोग दस रुपए वसूल करते हैं। इतना अनुचित लाभ उठाना क्या जघन्य कर्म नहीं है? एक व्यक्ति है, जो भूखा है, बुरी हालत में है, ऋण के बोझ से लदा है, जीविका का जिसके पास कोई साधन नहीं है, वह अनुचित ढंग से कुछ धन प्राप्त कर लेता है दूसरा व्यक्ति है, जो खुशहाल है, अधिक धन की जिसे आवश्यकता नहीं है, वह उचित के साथ ही अनुचित लाभ भी उठाता रहता है। एक का कर्म यदि जघन्य है, तो दूसरे के कर्म का यह अंश जघन्य क्यों नहीं है, जिसका आधार अनौचित्य है? बात साफ़ यह है कि हमारी नैतिक धारणाएँ अन्ध विश्वास तथा तर्कहीन विचारों पर आधारित हैं। इन धारणाओं के अनुसार चलकर क्या मिलेगा? पग-पग पर ठोकरें, घुटन, जलन, पतन, करुण अन्त! नहीं, नहीं, उसे तो सुख चाहिए, स्निग्ध सुख—सांसारिक सुख!

हीरालाल को यदि उसके ऊपर शक हुआ, तो? शक हो जायगा, तो क्या होगा? शक तो सबूत नहीं है। उसके पास सबूत ही क्या है? जो कुछ है, कुछ नहीं के बराबर है। सबसे बड़ा सबूत तो यहाँ मौजूद है। और इस सबूत पर होगा क्या, किसी की पहुँच हो सकना असम्भव है। इस सबूत को ऐसी जगह छिपा देना चाहिए, जहाँ कोई इसका पता न पा सके।

नोट समेटकर, उठकर, नोटों को एक टीन के डिब्बे में बन्द कर, लालटेन जला कर, एक करछुली लेकर, वह उस कमरे में गया जिस में निस रक्खी जाती थी। उस कमरे का कच्चा फर्श जगह जगह उखड़ा था। एक स्थान पर बैठकर वह करछुली से जमीन खोदने लगा। थोड़ी देर में एक छोटा-सा गड्ढा तैयार हो गया। उस गड्ढे में डिब्बे को रखकर, मिट्टी डालकर, उसने समान बराबर कर दी। फिर एक बड़ा घड़ा लाकर उस स्थान पर रख दिया, बड़े घड़े पर दो छोटे घड़े रख दिए, और उसके अगल-बगल भी उसने कई घड़े सजा दिए। अब भला, कोई क्या खा के उस सबूत का पता लगा सकेगा! उसकी बाछें खिल गईं। करछुली और लालटेन लेकर, वह उस कमरे से मुस्कराता हुआ बाहर निकला। अब मजे से बैठो, और चैन की वंशी बजाओ।

रसोई घर में करछुली रखकर, वह शयनागार में गया, लालटेन एक ओर फर्श पर रख दी, कोट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया और जूते उतारकर बिस्तर पर लेट गया। अब क्या करना होगा? आगामी कार्य-क्रम पर विचार करता हुआ, वह बड़ी देर तक पड़ा रहा।

सहसा किसीने घर के बाहर से आवाज लगाई—"रमेश बाबू! रमेश बाबू!"

यह तो हीरालाल की आवाज है! गजब हो गया! अब क्या करना चाहिए?

"रमेश बाबू! रमेश बाबू!"

खामोश रहना क्या अब उचित है? नहीं, नहीं, चलकर दरवाजा खोलना और साहस के साथ उसका सामना करना चाहिए।

सदर दरवाज़े की साँकल जोर से खड़खड़ा उठी। सहम कर, वह चारपाई से उतरा।

"रमेश! ओ रमेश!"

"आया, भाई!" लालटेन लेकर दरवाजे की ओर गया।

दरवाजा खोलकर, उसने हीरा की ओर देखा। गम्भीरता के आवरण में छिपी हुई उसके मुखमण्डल पर चिन्ता दिखाई दी।

"गए थे न क्या?"

"नहीं तो। अच्छा!"

हीरा ने घर में प्रवेश किया। दरवाजा भेड़कर, रमेश … ठिठका खड़ा रहा। फिर वह बैठक की ओर चला। बैठक में पहुँचकर, दोनों कुर्सियों पर बैठ गए। रमेश के मुख की ओर ध्यान से देखते हुए हीरा ने कहा— "मैं तो यहीं था। … गया, दादा!"

उत्सुक स्वर में वह बोला— "क्यों क्या हुआ?"

"किसी ने मेरे ट्रंक से ४८०) के नोट निकाल लिये।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ। इतने रुपये घर में क्यों रखते हो?"

"आप ही तो बैंक से निकाले थे, … एक आदमी को देने थे।"

"अजीब मामला है। यह किस आदमी का काम है?"

"नौकर के ऊपर शक जाता है। लेकिन, आज तक कभी उसने ऐसी हरकत नहीं की थी।"

"आजकल किसीके ईमान का कुछ ठीक नहीं है, हीरा!"

"यह तो ठीक कहते हो।"

"तो, अब क्या करोगे?"

"इसी चक्कर में तो हूँ कि क्या करूँ। पुलिस को रिपोर्ट करना तो फिजूल मालूम होता है।"

"क्यों! क्या हर्ज है?"

"अगर नौकर बेकसूर है, तो फिजूल सताया जायगा।"

"और, अगर वह अपराधी है, तो?"

"तो भी रुपये शायद ही हाथ आवें।"

"जैसा सोचो, भाई ! मेरे ख्याल में तो रिपोर्ट कर देने में कोई हर्ज नहीं है।"

"नहीं, यार, अब खामोश रहना ही मुनासिब मालूम होता है। ज्यादा से ज्यादा यह करूँगा कि मीरम को निकाल दूँगा।"

"यही मुनासिब हो, तो यही करो।"

"अच्छा, यार, अब चलूँगा।"

"बैठो न थोड़ी देर और !"

"नहीं, भाई, दिमाग परेशान है। अब इजाजत दो। जय रामजी की !"

"जय रामजी की !"

हीरा उठकर सदर दरवाज़े की ओर चला। लालटेन लेकर रमेश उसके पीछे गया। दरवाजा खोलकर, घर के बाहर निकलकर, हीरा ने कहा—"कल अर्जी जरूर भेज देना।"

"अच्छा।"

दरवाजा बन्द करके, वह गर्व से मुस्कराने लगा। अपना पार्ट कितनी अच्छी तरह अदा किया उसने। वाह ! वाह ! रमेश क्या, कोई भी उसे उस समय देखकर नहीं भाँप सकता था कि यह उसी की करतूत है। प्रसन्नता से उछलता हुआ, शयनागार में जाकर वह फिर बिस्तर पर लेट गया।

हीरालाल क्यों आया था इस समय ? क्या सलाह लेने के लिये ? लेकिन, पहले तो कभी किसी मामले में इस तरह आकर उसने उससे सलाह नहीं ली थी ? तब क्या उसे उसके ऊपर शक हो गया है ? शायद यही बात है। बैठक में कुरसी पर बैठकर, उसने उसके चेहरे की ओर गौर से देखा था। उसकी उस तीक्ष्ण दृष्टि में भाँपने का प्रयास अवश्य निहित था। किंतु उसने अपने मुख से कोई ऐसी बात नहीं निकाली जिससे उसका सन्देह प्रकट होता ? फिर

जैसा व्यक्ति ऐसी भूल कैसे करता ? नौकर के प्रति भी तो उसने उदारता का भाव ही व्यक्त किया था, अपना मनोभाव प्रकट न होने देने के लिये। अर्जी भेजने की ताकीद करके उसके प्रति भी तो उसने सहानुभूति प्रकट की थी ? यह भी उसकी एक चाल थी। अपना वास्तविक अभिप्राय गुप्त रखने ही के लिये उसने ऐसा किया था। यदि सचमुच उसके विरुद्ध भी उसने रिपोर्ट कर दी, तो ? क्या कर लेगी पुलिस ? लेकिन, माल का पता न लगा सकेंगा, तो भी पुलिसवाले उसे तंग करने से बाज न आयेंगे। तब ? भागना चाहिये ? हाँ, तुरन्त भागना चाहिये। अभी मौका है। पुलिस एक घंटे से पहले न आ सकेगी।

तुरन्त चारपाई से उतरकर, लालटेन लेकर, वह शीघ्रता से उस कमरे में गया। घड़े हटाकर, जमीन खोदकर, डिब्बा निकालकर, जमीन बराबर कर, घड़े ज्यों के त्यों रखकर, वह फिर शयनागार में वापस आया। तेजी से बिस्तरा बाँधकर, एक ट्रंक में कुछ कपड़े और ज़रूरी चीजें रखकर, कोट पहिनकर, डिब्बा खोलकर नोटों का बण्डल निकालकर, कोट की भीतरी जेब में रखकर, जूते पहिनकर, वह घर से बाहर निकला। दरवाज़े पर ताला लगाकर वह इक्कों के अड्डे की ओर लपका।

पाँच मिनट में इक्का आ गया। ताला खोलकर, घर से बिस्तरा और ट्रंक निकालकर, लालटेन बुझाकर, उसने फिर घर के दरवाज़े पर ताला लगा दिया। ट्रंक और बिस्तरा इक्के पर लदवा कर वह सवार हो गया। पड़ोसी सुखदेव सामने आया।

"कहाँ की तैयारी है, बाबूजी ?"

"एक रिश्तेदार के यहाँ जा रहा हूँ। शाम को उनका खत आया था। वह बहुत बीमार हैं। उन्हें देखने जा रहा हूँ। इक्के वाले ! चलाओ। देर हो रही है। अच्छा सुखदेव, राम, राम !"

"राम, राम, बाबूजी !"

इक्का चल पड़ा। तब उसने शान्ति की साँस ली। अब पुलिस अगर आयगी, तो भी मुश्किल से उसे पकड़ पायगी।

"जल्दी चलो, इक्केवाले !"

"बहुत अच्छा, बाबूजी ! किस गाड़ी से जाइएगा ?"

"कलकत्तावाली गाड़ी कै बजे आती है ?"

"वह तो साढ़े नौ बजे आती है ! घबराइए नहीं, आध घंटा पहले ही टेशन पहुँच जाइएगा।"

"जल्दी ही पहुँचना ठीक होता है, भाई !"

"यह तो ठीक ही है, बाबूजी ! जल्दी पहुँचने में सुबिस्ता रहता है। चल्री चल, चल्री चल ! खाने को दस सेर चाहिये, चलने क नाम नानी मरती है ! हाँ, हाँ ! उधर कहाँ मुड़ी जा रही है ?" इक्केवाला घोड़ी से झगड़ने लगा।

रमेश अपने विचारों म मग्न हो गया।

स्टेशन पहुँचकर कुली से असबाब उतरवाकर, इक्केवाले को पैसे देकर, टिकट खरीदकर, वह इटर के वेटिंग रूम में जा बैठा। स्टेशन का यही वह स्थान था, जो उसे किंचित सुरक्षित प्रतीत हुआ। पुलिस कहीं आती न हो ! छिपकर देखने का यहाँ काफी मौका है। यह बहुत अच्छा है कि यहाँ कोई और मुसाफिर नहीं है। पीछे की तरफ भी इस कमरे म एक दरवाज़ा है। पुलिस आ जाय, तो भी भागने का पूरा मौका है। भाग्य पूरी तरह उसकी सहायता कर रहा है। कुरसी से उठकर, वह सामने के दरवाज़े पर गया, और सावधानी से इधर उधर देखने लगा। रेलवे पुलिस का एक हेड कान्सटेबिल उधर टहलता हुआ दृष्टि गोचर हुआ। इतमीनान से टहलनेवाला वह हेड कान्सटेबिल उसकी खोज म नहीं है, और कोई पुलिसवाला दिखाई नहीं देता। अभी तक तो कुशल है। लौटकर, सिगरेट जला

पर, वह आरामकुरसी पर लेट गया। थोड़ी देर के बाद वह फिर उठकर दरवाज़े के समीप गया, और भीतर ही खड़े बाहर झाँकने लगा। दौड़ का कोई चिह्न फिर दिखाई न दिया। इस तरह जब तक गाड़ी आ नहीं गई, तब तक थोड़ी थोड़ी देर में बार बार वह सावधानी से देखता रहा। गाड़ी के आ जाने के बाद जब अन्य यात्रियों की दौड़ भाग शुरू हो गई, तो वह भी अपना असबाब उठवाकर इंटर के एक डिब्बे में सवार हो गया। एक खिड़की के समीप बैठकर वह बाहर झाँकने लगा। दौड़ फिर भी आता दिखाई न दी।

जब तक गाड़ी खड़ी रही तब तक वह उसी तरह बैठा हुआ झाँकता रहा, और जब गाड़ी चल पड़ी, तब शान्ति की साँस लेकर, सिगरेट जलाकर, वह लेट गया। अब डर की कोई बात नहीं है। कलकत्ते पहुँचकर वह ज़िन्दगी के मज़े लूटेगा, फिर वहीं कहीं नौकरी करके जम जायगा। चिन्ताएँ अब उसके पास न फटकेंगी, सुख उसकी सेवा करेगा। मारें अब तक़ाज़ा करनेवाले, सिर पीट-पीट कर रोएँ।

× × ×

कलकत्ता पहुँचकर, वह एक होटल में ठहर गया। कई सूट सिलवाकर, हैट, जूते तथा रसिकता की अन्य सामग्रियाँ खरीदकर, दो-तीन दिन में वह लैस हो गया। फिर वह सैर-सपाटे में, रस-रंग में तल्लीन हो गया।

सिनेमा, नृत्य, संगीत, मदिरा—इन साधनों के द्वारा असीम सुख उसे प्राप्त होने लगा। सौंदर्य के हाट की एक परी ने उसे मोह लिया। उसीके साथ अधिकांश समय व्यतीत करने में उसे अद्भुत आनन्द प्राप्त होने लगा। वह रकम तेजी से कम होती गई।

अन्त में वह दिन भी आ गया, जब दस का केवल एक नोट उसके पास रह गया। तब उसे होश आया। अब क्या करना चाहिए? नौकरी? लेकिन, कहाँ रक्खी है नौकरी इस बेकारी के ज़माने में? एक

बार फिर ? नहीं, नहीं। कुएँ में एक बार कूदने पर किसी तरह बच जाने से आदमी फिर कुएँ में कूदने के योग्य नहीं हो जाता। किन्तु, जो कार्य इतनी सरलता से किया जा सकता है उसे क्या कुएँ में कूदना कह सकते हैं ? फिर वह सदैव तो ऐसा काम करेगा नहीं ! एक बार और—केवल एक बार और ! नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं है। ठीक हो या न हो, उसे जीना है, और सुख से जीना है। और जब कोई, अन्य साधन प्राप्य नहीं है, तो जो साधन प्राप्य है उससे लाभ न उठाना मूर्खता है।

दिन के एक बजे का समय था। सङ्कल्प विकल्प की दशा में वह एक बैंक के सामने खड़ा हुआ था। सामने सड़क पर सवारियों और राहगीरों की भाग आ-जा रही थी। किन्तु, वह कुछ नहीं देख रहा था। उसका मस्तिष्क तो केवल एक प्रश्न में उलझा हुआ था। हाँ या नहीं ?

थोड़ी देर के बाद वह बैंक में घुसा। धन के उस केन्द्र में वैसी ही चहल-पहल थी जैसी साधारणतया ऐसे स्थान पर दिखाई देती है। रुपये जमा करनेवाले, निकालनेवाले तथा अन्य कर्मचारी—सब व्यस्त थे। इधर-उधर घूमकर, रमेश एक काउंटर के सामने जा खड़ा हुआ। वहाँ कई आदमी खड़े थे। दो व्यक्ति रुपया लेकर चले गये। उनके स्थान पर एक व्यक्ति आकर खड़ा हो गया। दो व्यक्तियों को रुपये देकर, क्लर्क ने उस व्यक्ति की ओर देखा, उसने अपना चेक क्लर्क के सामने बढ़ा दिया। चेक अच्छी तरह देखकर उस पर मुहर लगाकर, क्लर्क ने नोटों की एक बड़ी गड्डी उठाई। नोट कई बार गिनकर, उसने एक छोटी सी गड्डी उस व्यक्ति के सामने खिसका दी। उसने गड्डी उठाई। इसी समय उसका मित्र आकर उसके बगल में खड़ा हो गया। गड्डी काउंटर पर रखकर, वह उससे बातें करने लगा। रमेश के लिये यह स्वर्ण सुयोग था। उसका हाथ धीरे धीरे गड्डी की ओर खिसकने लगा।

कर, वह आरामकुरसी पर लेट गया। थोड़ी देर के बाद वह फिर उठ कर दरवाज़े के समीप गया, और भीतर ही खड़े बाहर झाँकने लगा। दौड़ का कोई चिह्न फिर दिखाई न दिया। इस तरह जब तक गाड़ी आ नहीं गई, तब तक थोड़ी थोड़ी देर में बार-बार वह सावधानी से देखता रहा। गाड़ी के आ जाने के बाद जब अन्य यात्रियों की दौड़ भाग शुरू हो गई, तो वह भी अपना असबाब उठवाकर इंटर के एक डिब्बे में सवार हो गया। एक खिड़की के समीप बैठकर वह बाहर झाँकने लगा। दौड़ फिर भी आता दिखाई न दी।

जब तक गाड़ी खड़ी रही तब तक वह उसी तरह बैठा हुआ झाँकता रहा, और जब गाड़ी चल पड़ी, तब शान्ति की साँस लेकर, सिगरेट जलाकर, वह लेट गया। अब डर की कोई बात नहीं है। कलकत्ते पहुँचकर वह ज़िन्दगी के मज़े लूटेगा, फिर वहीं कहीं नौकरी करके जम जायगा। चिन्ताएँ अब उसके पास न फटकेंगी, सुख उसकी सेवा करेगा। भख मारें अब तक़ाज़े करनेवाले, सिर पीट-पीट कर रोएँ।

× × ×

कलकत्ता पहुँचकर, वह एक होटल में ठहर गया। कई सूट सिलवाकर, हैट, जूते तथा रसिकता की अन्य सामग्रियाँ ख़रीदकर, दो-तीन दिन में वह लैस हो गया। फिर वह सैर-सपाटे में, रंग-रंग में तल्लीन हो गया।

सिनेमा, नृत्य, संगीत, मदिरा—इन साधनों के द्वारा असीम सुख उसे प्राप्त होने लगा। सौंदर्य के हाट की एक परी ने उसे मोह लिया। उसीके साथ अधिकांश समय व्यतीत करने में उसे अद्भुत आनन्द प्राप्त होने लगा। वह रकम तेज़ी से कम होती गई।

अन्त में वह दिन भी आ गया, जब दस का केवल एक नोट उसके पास रह गया। तब उसे होश आया। अब क्या करना चाहिये? नौकरी? लेकिन, कहाँ रक्खी है नौकरी इस बेकारी के ज़माने में? एक

तो क्या करता ? मजबूरी ! असम्भव था यह, अयोग्य था इसके लिए वह। आत्म-हत्या ? अमूल्य मानव जीवन पाकर उसे वृथा विनष्ट कर देना क्या उचित होता ? इस विशाल नगर में सहस्रों ऐसे व्यक्ति हैं, जो अनुचित ढंग से धन कमाते हैं, वे सब गिरफ्तार क्यों नहीं किए जाते ? न्याय का चक्र इतना सकुचित क्यों है कि उन्हें छू नहीं पाता ? जो धनी हैं, उन्हें अनुचित ढंग से धन अर्जन करने का अधिकार है किन्तु जो निर्धन हैं उन्हें अनुचित रूप से कुछ पाने का अधिकार नहीं है। विचित्र है विधि का विधान ! किन्तु क्या सचमुच अन्यायपूर्ण है यह विधान ? यदि प्रत्येक व्यक्ति का आचरण उसीके आचरण की भाँति हो जाय, तो कैसा हो जायगा यह संसार ? नरक-तुल्य ! अनुचित है न्याय की रोक ? नहीं, नहीं। उससे भूल हुई, भारी भूल हुई। किन्तु किसीको ऐसी भूल करने की आवश्यकता न पड़े, इसकी व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ? होनी चाहिए, अवश्य होनी चाहिए ! किन्तु क्या करना है इन विवादग्रस्त बातों से ? जो नहीं है, उसके लिए चिंतित होना वृथा है। जो है, उसे देखना चाहिए। जो है !—उसका कथित अपराध है, यह भयंकर कोठरी है, उसकी विवशता है। आगे क्या होगा ? दण्ड—सपरिश्रम कारावास ! जेल जाना होगा, जहाँ जहाँ मनुष्य मनुष्यत्व के दरजे से उतर कर पशुत्व की श्रेणी में पहुँच जाता है ! हाय रे दुर्भाग्य !

कुछ दिनों के बाद, जब उसका मुकदमा अदालत में पेश हुआ, तो उसने अपने बयान में कहा—हाँ, मैंने रुपए लिये थे। लेकिन मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि मैंने चोरी की। मुझे सख्त ज़रूरत थी, इसलिए मैंने रुपए लिये थे। अगर ज़रूरत न होती, तो हर्गिज़ न लेता। इस शहर में हजारों आदमी नाजायज़ तरीक़ों से माल काटते हैं, उनके ऊपर मुक़दमे क्यों नहीं चलाए जाते ? जिसे ज़रूरत है, उसे रुपया पाने का हक़ है। मेरे ख़याल से सरकार की तरफ़ से इस बात का

वे दोनों घुल घुलकर बातें करते रहे। गड्डी पकड़कर, हाथ धीरे धीरे लौटा और कोट की जेब में घुस गया। धीरे से हटकर, रमेश दरवाज़े की ओर चला। एक व्यक्ति, जो यह सब देख रहा था, तुरन्त नोटों के स्वामी के समीप गया और उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला—
"महाशय!"

"कहिए?"

"आपके नोट क्या हुए?"

"मेरे नोट!" मुड़कर उसने काउंटर की ओर देखा और आश्चर्य से चकित रह गया।

"उधर देखिए। वह आदमी आपके नोट लिये चला जा रहा है।"

"अरे! गज़ब हो गया!" वह तेज़ी से रमेश की ओर झपटा। उसके पीछे लपका उसका मित्र, और उसके पीछे खबर देनेवाला व्यक्ति।

आशंका से काँपकर, गरदन मोड़कर, रमेश ने पीछे देखा। तीनों तेजी से झपटे आ रहे थे। वह भागा, किन्तु बच न सका। तीनों उसके ऊपर टूट पड़े। और लोग भी आ गए। "पकड़ लो!" "बाँध लो!" शोर होने लगा। पुलिसवाले भी आ गए। वह गिरफ्तार कर लिया गया। जामातलाशी ली गई। नोट उसकी जेब से बरामद हुए।

सन्ध्या का समय था। रमेश हवालात में बंद था। उसके दुःख का पारावार न था। दुष्कर्म का परिणाम भी दुःखद होता है। बुरे मार्ग पर यदि वह पैर न रखता, तो उसे आज यह दिन क्यों देखना पड़ता? उससे भूल हुई, सचमुच भयंकर भूल हुई। एक भूल नहीं, उसमें अनेक भूलें हुईं। पाप के पथ पर एक बार चलने पड़ने पर रुक सकना असम्भव नहीं, तो अत्यन्त कठिन अवश्य होता है। किन्तु, पाप के उस पथ पर—यदि सचमुच वह पाप का पथ है—तो वह न चलता

इस तरह एक वर्ष बीत गया। एक दिन एक ऐसी घटना घटी, जिसने उसके जीवन की धारा को एक नई दिशा में मोड़ दिया। दिन का समय था। क़ैदी काम में लगे थे, वार्डर देख रेख कर रहे थे, और जेलर महोदय इधर उधर घूमकर निरीक्षण कर रहे थे। सहसा एक क़ैदी, जिसे डाके के एक मामले में सज़ा मिली थी, जेलर की ओर झपटा। उसके हाथ में एक छुरी थी। रमेश लपक कर उससे लिपट गया। कई वार्डर और क़ैदी दौड़े। शोर होने लगा। उस डाकू क़ैदी ने रमेश के हाथ, पैर और पीठ पर कई वार किए। फिर वह क़ाबू में कर लिया गया। कई गहरे ज़ख्म खाकर, अचेत होकर रमेश गिर पड़ा। उसी दशा में वह तुरन्त अस्पताल पहुँचाया गया।

मरणासन्न अवस्था में कई दिनों तक रमेश अचेत पड़ा रहा। किन्तु उसका जीवन-दीपक अभी बुझना नहीं चाहता था। चेतना लौट आई। धीरे धीरे घाव भरने लगे, और वह अच्छा होने लगा। जेलर नित्य एक बार उसे देखने आता था।

नित्य की भाँति जब उस दिन जेलर साहब उसे देखने आये, तो उन्होंने कहा—"रमेश बाबू! आपका एहसान मैं कभी नहीं भूल सकता। उस दिन आप मुझे न बचाते, तो मेरा काम तमाम हो जाता।"

"एहसान की इसमें कोई बात नहीं है, जेलर साहब! उस समय जो कुछ मुझे उचित जान पड़ा, वही मैंने किया था।"

"अपनी जान ख़तरे में डालकर किसी दूसरे को बचाना हर आदमी का काम नहीं है। यह वही कर सकता है जिसके विचार बहुत ऊँचे हों, दिलवाला हो, जिसमें साहस हो।"

रमेश सिर झुकाए हुए चुपचाप बैठा रहा। आत्म-गर्व उसके हृदय में हिलोरें मार रहा था, किन्तु उसकी छाया भी वह अपने चेहरे पर प्रकट नहीं होने देना चाहता था।

इन्तज़ाम होना चाहिए कि हर आदमी की ज़रूरत रफ़ा होती रहे। अगर ऐसा इन्तज़ाम होता, तो मुझे ऐसी हरकत करने की ज़रूरत न पड़ती, जो सरकार के ख़याल में नाजायज़ है। रोज़ी का कोई ज़रिया मेरे पास न था, काम कहीं मिलता न था, मैं लाचार था। मैं ख़ुदकुशी कर सकता था लेकिन यह भी तो नाजायज़ कार्रवाई होती। दो नाजायज़ हरकतों में से मुझे एक करनी थी। जो हरकत मुझे ठीक जँची, वह मैंने की। लेकिन मैं अपनी हरकत को नाजायज़ नहीं समझता।

फिर सबूत पक्ष के गवाहों के बयान हुए। अभियुक्त ने कोई सफ़ाई नहीं दी। वकीलों की बहस हुई। अभियुक्त ने कोई वकील नहीं किया था। सरकार के ख़र्च से उसकी ओर से जो वकील था उसने अदालत से दया की प्रार्थना की।

किन्तु न्यायाधीश महोदय न तो अभियुक्त के बयान से और न उसके वकील की दलीलों से प्रभावित हुए। उसे कड़ी सज़ा देना ही उन्होंने उचित समझा। रमेश को चार वर्ष सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला। वह जेल भेज दिया गया।

× × ×

जेल में रमेश एक सच्चे, ईमानदार, मेहनती क़ैदी की तरह जीवन व्यतीत करने लगा। जो और जितना काम उसे दिया जाता, उसे वह अत्यन्त परिश्रम तथा अपनी सम्पूर्ण योग्यता से सम्पादित करता। नियति के विरुद्ध उसके हृदय में जो विद्रोह की भावना उठ रही हुई थी, वह अपनी विकटता त्याग कर, शान्त होने लगी थी। जेल के विषय में उसकी जो कल्पनायें की थीं, वे पूर्णतया मिथ्या नहीं थीं। वहाँ का कठोर अनुशासन, दोषपूर्ण भोजन वस्त्र—सभी बातें अवाञ्छनीय थीं। किन्तु, थोड़े ही दिनों में उसका व्यक्तित्व, झुक कर, फैलकर, उठकर, उस वातावरण में जीवित रहने के योग्य बन गया। वह असन्तुष्ट न था, क्योंकि यहाँ बाहर की सी चिन्तायें उसे तंग नहीं करती थीं।

बन्दी-गृह के नीरस, शुष्क वातावरण का चित्रण था, बाह्य संसार की सुमधुर कल्पनाएँ थीं, और थी घर की याद।

कविता समाप्त करके, वह जेलर के कमरे में गया। जेलर ने मुस्कराकर पूछा—"कहिए, रमेश बाबू?"

"आपसे एक प्रार्थना करने के लिये आया हूँ।"

"कहिए, कहिए!"

"मैंने एक कविता लिखी है।"

"बड़ी खुशी की बात है।"

"उसे मैं एक मासिक-पत्र को भेजना चाहता हूँ।"

"किस भाषा में है?"

"हिन्दी में।"

"उसमें राजनैतिक रंग तो नहीं है?"

"बिलकुल नहीं।"

"तब ठीक है।" आज की डाक तो जा चुकी। कल उसे भेज दीजिएगा।"

"धन्यवाद।"

दूसरे दिन कविता रवाना हो गई। एक सप्ताह में जवाब आ गया। पत्र के सम्पादक ने धन्यवाद-सहित कविता स्वीकार की, शीघ्र ही प्रकाशित करने का आश्वासन दिया था, और अन्य रचनाएँ भेजते रहने का अनुरोध किया था। रमेश खुशी से उछल पड़ा।

काव्य-रचना में वह नित्य संलग्न रहने लगा।

× × ×

हँसते खेलते कारावास की अवधि समाप्त हो गई। रमेश जेल से बाहर निकला। वह एक धर्मशाला में जा ठहरा। स्नान तथा भोजन के पश्चात् एक समाचार-पत्र खरीदकर वह एक विज्ञापन देखने लगा। एक बीमा कम्पनी को एक क्लर्क की आवश्यकता थी। उसी समय

"आपको किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है ?"

"आपकी दया से और सब कुछ यहाँ प्राप्त है। सिर्फ़ एक चीज़ की ज़रूरत ज़रूर है।"

"किस चीज़ की ? फौरन बतलाइये।"

"यहाँ इस तरह पड़े-पड़े तबीयत ऊबता है। अगर दो-चार पुस्तकें मिल जाएँ, तो समय बड़े मज़े में कट जाया करे।"

"इसमें क्या मुश्किल है ? अभी भेजवाता हूँ।"

जेलर साहब चले गए। आध घंटे में एक वार्डर अंग्रेज़ी और हिन्दी की कई पुस्तकें दे गया। बड़ी उत्सुकता से रमेश उनको उलटने लगा। उन पुस्तकों में सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि वायरन की कविताओं का एक संग्रह भी था। इसी पुस्तक में रमेश की तबीयत जम गई। मस्त होकर, झूम-झूमकर वह पढ़ने लगा। रसगंगा की धारा अन्तर्दृष्टि के सम्मुख प्रवाहित होने लगी। मस्ती से छलकते हुए भाव, सुन्दर-सूक्ष्म विचार, रंगीली-मादक कल्पनाएँ उसके दुःख-व्यथित मनोलोक में नृत्य करने लगीं। अपने कष्टों तथा अस्पताल के उस दुःखद वातावरण से ऊपर उठकर, वह स्वप्नलोक में विचरण करने लगा।

दो मास में बिल्कुल चंगा होकर, वह अस्पताल से निकला। जेलर की कृपा से उसे बहुत हलका काम दिया जाने लगा। पठन, मनन, चिन्तन में ही उसका अधिकांश समय जाने लगा। काव्य के प्रति उसे पहले से ही प्रेम था, अब वह दिन-प्रतिदिन निखरने लगा।

एक दिन सहसा उसके मन में काव्य-रचना की प्रेरणा हुई। उसकी कल्पनाशक्ति अपूर्व वेग से अपने कार्य में संलग्न हो गई। भाव, विचार, शब्द मन में उठ-उठकर कागज़ पर उतरने के लिए मचलने लगे। फाउंटेन पेन और कागज़ लेकर वह लिखने के लिए बैठ गया।

दिन भर में एक सुन्दर, भावपूर्ण कविता तैयार हो गई। उसमें "बन्दीगृह" में फँसे हुए एक बन्दी की मनोव्यथा का हाहाकार था।

नियुक्त कर दिया। उसकी खुशी का ठिकाना न था। दिन भर दफ़्तर में मेहनत करने, और शाम-सवेरे साहित्य-सेवा में वह अपना समय व्यतीत करने लगा। वह स्वादिष्ट तथा स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन करता था, अच्छे और साफ कपड़े पहिनता था, मनोरंजन के निर्दोष साधनों से लाभ उठाता, किन्तु किफ़ायत से चलता था।

उसके कठिन परिश्रम तथा योग्यता ने मीठे फल दिए। एक वर्ष के बाद ही वह सहायक मैनेजर के पद पर पहुँच गया। उसे अच्छा वेतन मिलने लगा। बैंक में जमा की हुई रकम उसकी तेज़ी से बढ़ने लगी। तब उसने हीरालाल को पत्र लिखा —

"प्रिय हीरा,

यह पत्र पाकर तुम्हें आश्चर्य होगा, शायद खुशी भी हो। अनेक कष्ट सहने के बाद अब मेरी दशा सुधरी है। बड़े मज़े में हूँ। अपना हाल लिखो।

तुम्हारा मित्र,
रमेश"

चार दिन के बाद उसे यह उत्तर मिला —

"प्रिय रमेश,

तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी खुशी हुई। तुम तो एकाएक ऐसे गायब हुए कि इतनी मुद्दत तक अपनी कोई खबर ही न दी। हम सब बड़े आश्चर्य में थे। यह बड़े सन्तोष का विषय है कि अब तुम इतनी अच्छी हालत में हो। मैं तो बड़ी मुसीबत में हूँ, भाई! साल भर तक क्षय-रोग से पीड़ित रहकर मेरी स्त्री चल बसी। उसके इलाज में मुझे बहुत खर्च करना पड़ा, और उसकी तीमारदारी में रहने के कारण मैं कुछ काम भी नहीं कर सका था। कर्ज के बोझ से लदा हूँ। मेरी हालत बहुत खराब है।

तुम्हारा—
हीरा"

धर्मशाला से निकलकर, वह उस कम्पनी के कार्यालय की ओर रवाना हो गया।

कम्पनी के दफ़्तर में पहुँचकर, उसने इत्तला कराई। तुरन्त मुलाक़ात के लिए वह बुलाया गया। उसने मैनेजर के कमरे में प्रवेश किया। अंग्रेज़ मैनेजर ने उसे सिर से पैर तक देखकर, कहा—"वेल ?"

"नौकरी के वास्ते आया हूँ।"

"अब तक आप कहाँ काम करते थे ?"

"ढाई साल पहले मैं एक कारखाने में काम कर चुका हूँ।"

"इस बीच में क्या करते रहे ?"

"जेल में बन्द था, जनाब।"

"किस जुर्म में सजा मिली थी ?"

"चोरी के जुर्म में।"

"तुमने चोरी की थी ?"

"क़ानून की परिभाषा के अनुसार तो मैंने चोरी ही की थी, लेकिन...।"

"क्यों चोरी की थी तुमने ?"

"काम कहीं मिलता न था, पैसे पास न थे, मेरी हालत बहुत ख़राब थी।"

"अब तो कभी ऐसा काम नहीं करोगे ?"

"नहीं।"

"तुम्हारी स्पष्टवादिता से मैं बहुत ख़ुश हुआ। आज ही से यहाँ काम करना शुरू कर दो। एक सप्ताह के बाद तुम्हारा काम देखकर मैं तय करूँगा कि तुम्हें रक्खूँ या नहीं।"

"धन्यवाद !"

उसी दिन से वह उस दफ़्तर में काम करने लगा। एक सप्ताह के बाद उसके काम से ख़ुश होकर मैनेजर ने उसे सन्तोषजनक वेतन पर

हीरा की आँखें भी डबडबा आई। अवरुद्ध कण्ठ से उसने कहा—"ठीक कहते हो, रमेश ! उस समय तो मैं नहीं समझा था, लेकिन, आज जब मेरी दशा भी वैसी ही खराब है, तो मैं समझ सकता हूँ कि उस समय तुम्हारी दशा कैसी रही होगी।

इसके बाद रमेश ने कलकत्ता पहुँचने और उसके बाद का सारा हाल कह सुनाया। तब एक दीर्घ निःश्वास खींचकर, हीरा ने कहा—"मानव-जीवन बड़ा विचित्र है, रमेश ! कब क्या हो जायगा, हम कहाँ से कहाँ पहुँच जायँगे, इसकी लेश-मात्र भी सूचना हमें पहले से नहीं मिलती !

"आनेवाली घटनाओं की सूचना यदि हमें पहले ही से मिल जाया करे, तो कितना अच्छा हो !"

"कदाचित अच्छा हो, कदाचित बुरा भी !"

"ठीक कहते हो।"

मौन होकर कुछ समय तक दोनों अपने-अपने विचारों में खोये हुए बैठे रहे। फिर रमेश ने कहा—"अभी मुझे औरों के रुपए भी अदा करने हैं।"

"इसकी चिन्ता न करो, रमेश ! तुम्हारे चले जाने के बाद ही मैंने सबके रुपए अदा कर दिए थे।"

"हीरा ! तुम सचमुच हीरा हो !"

यह पत्र पाकर, रमेश ने हीरा का धन्यवादानुसार पत्र लिखा और उसके साथ ही १०००) का चेक भी भेज दिया।

इस सामयिक सहायता के लिए हीरा ने उसे हार्दिक धन्यवाद दिया, और दो-चार दिनों के लिए उसे आदरपूर्वक बुलाया। अब, एक सप्ताह की छुट्टी लेकर रमेश इलाहाबाद के लिए रवाना हो गया।

इलाहाबाद स्टेशन पर हीरालाल उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। दोनों मित्र प्रेम से गले मिले। फिर हीरा उसे अपने घर लिवा ले गया। वहाँ उसने उसकी बड़ी खातिर की।

भोजन के उपरान्त बैठक में आरामकुर्सियों पर दोनों मित्र आराम से बैठे हुए थे। हीरा ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर में कहा—"रमेश! अगर तुम इस समय मेरी सहायता न करते, तो मैं दिवालिया हो जाता।"

"मैंने सहायता नहीं की, हीरा, अपना ऋण चुकाया है।"

"ऋण कैसा, भाई?"

"तुमने मुझे ऋण दिया था! क्या तुम्हें याद नहीं है?"

"जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, मैंने तुम्हें कभी कोई ऋण नहीं दिया था।"

"तुम्हारे घर रुपए किसने चुराए थे, हीरा?"

"मैं नहीं जानता।"

"मैंने चुराए थे।"

"तुमने?"

"हाँ, मैंने। क्या तुम्हें शक नहीं हुआ था?"

"शक तो मुझे जरूर हुआ था, और इसीलिए मैं तुम्हारे घर गया था। लेकिन तुमसे मिलने के बाद मेरा शक दूर हो गया था।"

"अगर उस दिन मैं चोरी न करता, तो मुझे आत्महत्या करनी पड़ती।" रमेश की आँखों में आँसू छलक आए।

तरफ चलने को कह भी दिया। कार चल पड़ी, और पन्द्रह मिनट के बाद यूनिवर्सल के सामने पहुँच गई। मोटरों की लम्बी कतारें डटी थीं। नगर का सुशिक्षित समाज एक महान् कला का रस लेने के लिए उमड़ आया था। कार से उतर कर मैं भी भीड़ में जा मिला। बड़ी कठिनाई से टिकट मिला। किसी तरह मैं जा बैठा।

ठीक साढ़े छः बजे संगीत छिड़ा, और मानो इन्द्रपुरी की एक अप्सरा मंच पर उतर कर नृत्य करने लगी। बिजली मानो गगन में घूँघट उठा-उठा कर हँसने लगी, चाँदनी मानो सरिता की लहरों से अठखेलियाँ करने लगी। तारे झिलमिलाए, चाँद हँसा, उषा मुस्कराई, मध्याह्न तड़पा, सन्ध्या गम्भीर हुई, ग्रीष्म ने अग्नि वर्षा की, पावस ने झड़ी लगाई, शरद ने शीत की लहरें दौड़ाईं, बसन्त ने सौंदर्य माधुरी बिखेरी, आनन्द सागर की भाँति उमड़ा, सौंदर्य ने चित्रकारी की, शक्ति मूर्त्तिमान हुई—यह सब देखा मैंने प्रेमलता के नृत्यों में, औरों ने चाहे जो कुछ देखा हो। मैं कलाविद नहीं कि उसका विश्लेषण कर सकूँ, किन्तु एक साधारण दर्शक की हैसियत से कह सकता हूँ कि आनन्द की जैसी अनुभूति मुझे उस दिन हुई, वैसी लन्दन और पेरिस में प्रसिद्ध यूरोपियन नर्तकियों के सुन्दर नृत्यों से भी नहीं हुई। मैं भूल गया कि कौन हूँ, कहाँ हूँ। और यही शायद प्रेमलता की सब से बड़ी सफलता थी।

जब कार्यक्रम समाप्त हुआ, और मैं हॉल से बाहर निकला, तो मेरे ऊपर एक अजीब नशा-सा छाया हुआ था। प्रेमलता का चित्र मेरी आँखों में फिर रहा था, और मेरा दिल उसमें इस तरह उलझा हुआ था जैसे कभी उससे अलग न हो सकेगा। खोया हुआ-सा, ठगा हुआ-सा कार में बैठकर मैं घर की ओर रवाना हो गया।

अर्द्ध रात्रि बीत चुकी थी। और मैं अपने पुस्तकालय में एक आरामकुरसी पर लेटा हुआ, सिगरेट जलाता हुआ सोच रहा था कि

दर्द

मेरे दिल में एक दर्द है, जो ऐसा नहीं हो सकता, और जिसे मैं ऐसा करना भी नहीं चाहता। और है मेरे दिल में एक तस्वीर, जो हट नहीं सकती, और जिसे मैं हटाना भी नहीं चाहता। उस दर्द में जो लज्जत है वह कभी किसी चीज में नहीं मिली, और उस तस्वीर में जो खूबसूरती है वह कभी नहीं नजर से नहीं गुजरी। अपने निरानन्द जीवन के कण्टकीले पथ पर उन्हीं दोनों के सहारे मैं चल रहा हूँ। मेरे मित्र समझते हैं कि मैं एक जिन्दादिल आदमी हूँ, क्योंकि हँसने हँसाने की कला में मैं दक्षता प्राप्त कर ली है। लेकिन वे यह नहीं जानते कि मेरी जिन्दादिली के परदे में एक आग जल रही है, जो कभी बुझ नहीं सकती, और जिसे मैं बुझाना भी नहीं चाहता। कितने दिन चल सकेगा इस निरीह जीवन का व्यापार उसके बुझ जाने पर!

उस दिन दो जरूरी मुकदमों में बहस करने के बाद मैं सन्ध्या समय घर लौटा, तो मेरा शरीर शिथिल हो गया था, चित्त अशान्त था। चाय पीने के बाद कार पर सवार होकर मैं सैर के लिये निकल गया। बड़ी देर तक निरुद्देश्य भाव से इधर उधर चक्कर लगाता रहा। शिथिलता कुछ दूर हो गई, चित्त कुछ शान्त हो गया।

रिपन रोड पर मेरी कार मस्ती से चली जा रही थी। सहसा मेरी दृष्टि सामने के चौराहे के समीप एक वृक्ष पर टँगे हुये एक बड़े पोस्टर पर जम गई। तुरन्त मोटर रुकवा कर मैं उसे पढ़ने लगा। ज्ञात हुआ कि यूनिवर्सल थिएटर में महान् नर्तकी मिस प्रमलता का कलापूर्ण नृत्य उपयुक्त संगीत के साथ प्रति दिन सायंकाल साढ़े छः बजे होता है। मेरे मन में देखने की इच्छा उठी, और मैंने तुरन्त ड्राइवर से उसी

उतरकर मैं आगे बढ़ा। जीवननाथ ने लपककर मेरा स्वागत किया। हँस कर, हाथ मिलाकर, उसने कहा—"बहुत अच्छा किया, आ गए। तुम न आते, तो मजा किरकिरा हो जाता।"

"आता क्यों न, यार!"

"चलो बैठो।"

इतने में एक दूसरी कार आ गई। जीवन उसकी ओर बढ़ा। मैं लॉन की ओर चला। घास के हरे फ़र्श पर सोफे, मेजें और कुरसियाँ कायदे के साथ सजी हुई थीं। वर्दीपोश सेवक इधर-उधर अदब से खड़े हुए थे। मैं एक सोफे पर बैठ गया। एक सेवक ने तुरन्त सिगरेट पेश किया। सिगरेट जलाकर मैं अपने विचारों में डूब गया।

मेहमान बराबर आते गए। देखते-देखते सारा लॉन सुशिक्षित, स्त्रियों और पुरुषों से भर गया। ठीक साढ़े चार बजे प्रेमलता सदल आ पहुँची। जीवननाथ तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने बढ़कर स्वागत किया। मैं भी उन लोगों में था। प्रेमलता लॉन पर लिवा लाई गई। अन्य अतिथियों का उससे परिचय कराया जाने लगा। मेरा नम्बर भी आया। मुस्कराकर, हाथ मिलाकर प्रेमलता ने कहा—"आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।"

"मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर," किंचित संकोच पूर्ण स्वर में मैंने उत्तर दिया।

शब्द तो वही थे जो प्रेमलता ने अन्य लोगों से कहे थे, किन्तु मुझे उसके स्वर में एक विशेष कम्पन का आभास मिला। सम्भव है, यह कल्पना-जनित भ्रम ही रहा हो लेकिन बाद की घटनाओं से मुझे तो यही प्रतीत होता है कि मेरी यह धारणा सत्य थी। आनन्द से भरा हृदय नाच उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण में व्यग्र हो उठा, अपने अनुमान की सत्यता असत्यता को जाँच करने के लिये।

सब बैठ गये। मुझे भी उसी मेज पर स्थान मिला, जिस पर प्रेमलता बैठी हुई थी। जलपान शुरू हुआ। वार्त्तालाप भी होने लगा।

मेरा इतना पढ़ना लिखना, धन कमाना, गृहस्थी चलाना क्या व्यर्थ नहीं गया ? मेरे जीवन में क्या एक ऐसा अभाव रहा, जिसकी पूर्ति नहीं हुई ?

प्रेमलता से व्यक्तिगत परिचय प्राप्त करने के लिये मैं उत्सुक हो उठा। कैसे मिलूं उससे ? कोई ऐसा उपाय नहीं सूझता था। मुझे पसन्द आ जाता।

× × ×

सवेरे जब मैं सोकर उठा, तो आठ बज चुके थे। तबीयत कुछ भारी थी। रात की बातों का सिलसिला, जो स्वप्न में भी छिड़ा हुआ था, इस समय भी जारी था।

पुस्तकालय में जाकर, मैं एक आरामकुरसी पर लेटकर, सिगरेट पीने लगा। एक सेवक ने उस दिन का समाचार-पत्र और एक बड़ा लिफाफा मेरे सामने पड़ी हुई छोटी मेज पर रख दिया। तुरन्त लिफाफा खोलकर मैंने देखा और प्रसन्नता से उछल पड़ा। मिस प्रेमलता के सम्मान में मिस्टर जीवननाथ बीच ने उसी दिन सन्ध्या के समय एक 'एट होम' का आयोजन किया था। उसमें सम्मिलित होने के लिये यह निमंत्रण था। छपे हुये कार्ड के पुश्त पर जीवन ने अपने हाथ से इतना और लिख दिया था—"जरूर आना। न आओगे, तो माफ न करूँगा।" इस ताकीद की क्या जरूरत थी ? इसके बगैर क्या मैं न जाता ? जरूर जाता, हजार काम छोड़कर जाता !

उस दिन मेरे तीन मुकदमे थे। दो को मुल्तवी करा कर और किसी तरह एक की पैरवी करके, तीन बजे मैं घर लौट आया, और दावत में शरीक होने की तैयारी करने लगा।

ठीक चार बजे सजधजकर मैं जीवननाथ के घर की ओर रवाना हो गया। पन्द्रह मिनट में मेरी कार निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गई। जीवन का निवास स्थान बड़ी सुन्दरता से सजाया गया था। कार से

पार्टी समाप्त हो गई। सब लोग उठ खड़े हुये। मैं प्रेमलता के बिलकुल समीप पहुँच गया। न जाने कैसे, उसका हैंड-बेग उसके हाथ से गिर गया। तुरत झुककर, उठाकर मैंने उसे दे दिया।

"धन्यवाद!" प्रेमलता ने कहा—"अगर आपसे फिर भेंट हो सके, तो मुझे बेहद खुशी होगी।"

"आपसे फिर मिलने का अवसर पाकर मैं अपने को बड़ा भाग्यवान मानूँगा। किस समय मुलाकात हो सकती है आपसे?"

"तीसरे पहर मुझे फुर्सत रहती है।"

"बेहतर है, कल ही हाजिर होऊँगा।"

हवा के घोड़े पर सवार होकर मैं नभ मण्डल की सैर करने लगा। सामने आ उपस्थित हुआ सौंदर्य का एक अति मनोरम प्रदेश। स्वागत करने लगीं आशाएँ पग-पग पर। और जीवन एक नये साँचे में ढल कर पूर्णता के निकट पहुँच जाने के लिए आतुर हो उठा।

× × ×

दूसरे दिन ठीक दो बजे मैं रिलायंस होटल पहुँचा। एक सेवक से मैंने अपना कार्ड भेजवाया। वापस आकर वह मुझे एक सुसज्जित कमरे में लिवा ले गया। एक आरामकुरसी पर बैठकर मैं बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा। सहसा दरवाजे का परदा उठा, और प्रेमलता मुस्कराती हुई अन्दर आई। तुरन्त उठकर मैंने नमस्कार किया। उत्तर देकर वह मेरे समीप एक दूसरी आरामकुरसी पर बैठ गई।

"मेरे इस समय आने से आपको किसी तरह की असुविधा तो नहीं हुई?"

"जी नहीं। लेकिन यह प्रश्न क्यों? क्या केवल शिष्टाचार के कारण?"

मैं मुस्कराने लगा। कोई उपयुक्त उत्तर मुझे नहीं सूझा।

"असुविधा मुझे क्यों होने लगी। जब मैंने स्वयं आपको बुलाया था!"

"माफ कीजिए!" मैंने घबराकर कहा—"मेरा मतलब यह था कि शायद आप आराम करती रही हों, और मेरे आने से उसमें खलल पड़ा हो।"

"आप इतमीनान रखें। दिन के समय मैं सोने की आदी नहीं हूँ, और मेरा ख्याल है कि इस समय यहाँ बैठने में मुझे किसी तरह की भी तकलीफ नहीं हो रही है।"

मैं निश्चिन्त हो गया। तो यहाँ उस कृत्रिमता के आवरण की आवश्यकता नहीं, जिसकी आड़ में हमारे आधुनिक समाज की संस्कृति पलती पनपती है। उसका सहारा लेने का आदी तो मैं अवश्य हो गया हूँ, लेकिन यह बात नहीं कि मुझे उससे प्रेम हो। उसमें अस्वाभाविकता जो है।

"मैं बिल्कुल स्वतन्त्र हूँ।" प्रेमलता ने कहा—"मेरी इच्छाओं-अनिच्छाओं पर किसी का जरा भी नियन्त्रण नहीं। इसलिए कल जब मुझे इच्छा हुई कि आपसे फिर भेंट हो, तो आपको निमन्त्रित कर देने में मुझे जरा भी हिचक नहीं हुई। जानते हैं, मुझे यह इच्छा क्यों हुई थी?"

"नहीं।"

"इसलिए कि मुझे ऐसा जान पड़ा था कि जैसे आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं, लेकिन कह नहीं पाते। सच है न यह बात?"

"बिल्कुल सच।"

"क्या कहना चाहते थे आप?"

"जो कुछ मैं कहना चाहता था, वह उससे भिन्न नहीं था जो और लोग कह रहे थे। शब्द मेरे अवश्य भिन्न होते।"

"यानी, आप भी मेरी तारीफ करना चाहते थे।"

"बेशक !"

"किसी को अपनी तारीफ बुरी नहीं लगती, महेन्द्र बाबू ! मैं भी अपवाद नहीं हूँ । अपनी योग्यताओं से परिचित हूँ, और जानती हूँ कि नृत्य-कला के विकास के लिए जो कुछ कर रही हूँ वह नगण्य नहीं है। लेकिन कल मेरी जो प्रशंसा की गई थी, उसे मैं साधारण शिष्टाचार से अधिक नहीं समझती। उसमें अनावश्यक कृत्रिमता की ध्वनि थी। मेरी यह आलोचना आपके लिए नहीं है, क्योंकि आपके शब्द मुझे सुनने को नहीं मिले।"

"मेरे शब्दों में शायद कुछ अतिशयोक्ति तो जरूर होती, लेकिन विश्वास कीजिए, उनमें कृत्रिमता न होती।"

"अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। आप वकील तो जरूर हैं, लेकिन मेरा ख्याल है कि अगर आप चाहें तो सचाई से काम ले सकते हैं।"

"धन्यवाद।"

"चाय पीजिएगा।"

"कोई जरूरत तो नहीं है।"

"तकल्लुफ तो नहीं कर रहे हैं ?"

"बिलकुल नहीं। तकल्लुफ की गुंजाइश ही अब कहाँ रह गई है ?"

"तब ठीक।"

मैं चुप रहा।

"कहीं घूमना चाहती हूँ। थोड़ी-सी खुली हवा की जरूरत मालूम हो रही है। वक्त भी काफी है।"

"चलिए, कार बाहर मौजूद है।"

"अभी आती हूँ।"

वह चली गई उठकर, और मैं सोचने लगा उसी की बात। कला की जो मूर्ति रात में उतरती मंच पर, वह कितनी भिन्न है इस प्रेमलता

से। यह तो है प्रयाग की एक रचना जो दाद में आ नहीं सकती। लेकिन यह है दाद नाव की एक शकुन्तला मूर्ति, जो निकट से निकट आती जा रही है, और उसे उसकी यह क्रिया रुकती भी नहीं। किन्तु क्या मैं रोकना चाहता हूँ उसे? नहीं, हर्गिज नहीं! फिर यह प्रश्न ही क्यों? वह तो अपने सामीप्य से निकटतम ही बनाना चाहती है मुझे। और शायद यही मैं कहता हूँ, जो मैं चाहता था और चाहता हूँ। फिर यह हल्की-सी घबराहट क्यों उठ खड़ी हुई है मन में? निर्धन धन चाहता है, लेकिन एकाएक धन सामने पाकर सहम जाता है। सम्भव है यही बात हो, और सम्भव है उसकी जड़ कहीं और भी दूर फैली हो।

तैयार होकर वह आ गई। मैं उठ खड़ा हुआ।

"चला जाय?"

"चलिये।"

बाहर आकर हम कार में बैठ गए। अपने स्थान पर बैठकर शोफर ने पूछा—कहाँ चलूँ, हुजूर?

"कहाँ चलिएगा?"

"कहीं भी।"

"बाँध की तरफ चलो।"

"बहुत अच्छा।"

कार हवा से बातें करने लगी।

एक घण्टे के बाद। गंगा के वक्ष पर एक डोंगी मन्द गति से चल रही थी। और उस डोंगी पर प्रेमलता मेरी बगल में बैठी हुई थी। आकाश में सफेद बादलों के टुकड़े तैर रहे थे। सुदूर वृक्षों की पंक्तियाँ धीरे-धीरे खिसकती दृष्टिगोचर हो रही थीं। टिटिहरियाँ जल को छू-छूकर उड़ रही थीं। बगुले ध्यानस्थ खड़े हुए थे। अँधियार नामक छोटी-छोटी मछलियाँ जल पर उछलती हुई चल रही थीं। शीतल समीर के मधुर झोंके शरीर

में गुदगुदी पैदा कर रहे थे। एक अजीब मस्ती थी, जो समस्त वातावरण में थिरकती जान पड़ती थी। उसी मस्ती से घिरा हुआ, दबा हुआ मैं सोच रहा था उस उद्विग्नता की बात, जो रह-रहकर चुभ रही थी मेरे मन में काँटे की तरह। उसे रखने के लिये क्या मेरे पास स्थान नहीं? किन्तु अभी कल ही तो मुझे बोध हुआ था एक विचित्र सूनेपन का?

"महेन्द्र बाबू!" प्रेमलता ने कहा, "न जाने क्या, आपके ऊपर मेरा विश्वास प्रतिपल दृढ़ होता जा रहा है।"

"इसे मैं अपना असीम सौभाग्य मानता हूँ।"

"और इस में गलती नहीं, प्रोत्साहन देना चाहती हूँ, इसलिए लेकिन पहले एक बात बतलाइये। आप कोई ऐसी बात तो न करेंगे, जिसके कारण मुझे बाद में पछतावा हो?"

"अगर मेरे वचन का कोई मूल्य हो, तो यह कहने को तैयार हूँ कि मैं कोई ऐसा काम न करूँगा, जिसे आप अनुचित कह सकें या कोई भी अनुचित कह सके।"

"बस, इतना काफी है। अब मैं आपसे अपना सारा हाल कहूँगी।"

"जरूर कहिये, मैं उत्सुक हूँ।"

"संसार की इस वाटिका में एक मस्त तितली की तरह घूम रही हूँ। लेकिन मेरा मन दुखी है, और उसमें एक विचित्र सूनापन है।"

"मुझे बड़ा अफसोस हुआ यह सुनकर।"

एक निःश्वास खींचकर वह चुप हो गई, ऐसा जान पड़ा, जैसे मन में उठे हुये किसी भाव को दाबने की कोशिश कर रही हो। फिर बोली—

"बड़ी भयानक कठिनाइयों के बीच चलकर उस स्थान पर पहुँची हूँ, जहाँ आज मौजूद हूँ। नृत्य-कला के प्रति अपने प्रेम के कारण ही, मैंने उसे नहीं अपनाया है। प्रेम के अतिरिक्त आवश्यकता का भी प्रश्न था। मेरे पिता एक सरकारी दफ्तर में एक साधारण क्लर्क थे और

उनके ऊपर एक बड़ी गृहस्थी का भार था। स्वयं, पत्नी, एक विधवा बहिन, दो लड़के और चार लड़कियाँ—इतने प्राणी थे उनके परिवार में। वेतन बहुत मामूली था। काम बड़ी कठिनाई से चलता था। सबसे बड़ी लड़की मैं ही थी। मुझे शिक्षा दी जा रही थी इस विचार से कि शायद बाद में दहेज से बचत हो जाय। लेकिन जब मैं सयानी हुई, तो यह विचार भ्रम सिद्ध हुआ। मेरे लिए वर की तलाश में पिताजी जहाँ कहाँ जाते, दहेज की रकम सुनकर हैरान हो जाते और निराश होकर लौटते। उनकी लड़की सुन्दर है, सुशिक्षित है—इस बात में किसीने दिलचस्पी जाहिर नहीं की। किसी को उनसे जरा भी सहानुभूति नहीं हुई। माता पिता दोनों हर समय उदास रहते, और अपने असीम दुर्भाग्य का रोना रोते। यह सब मैं देखती-सुनती और एकान्त में चुपचाप आँसू बहाती। अक्सर जी में आता कि आत्म हत्या कर लूँ। लेकिन मैंने सुन रखा था कि इस जन्म में आत्म हत्या करने से अगले जन्म में भूत बनना पड़ता है। चुड़ैल बनने के विचार से मैं काँप उठती और मेरे साहस का अन्त हो जाता। आखिर बहुत सोचने विचारने के बाद मैंने अपना मार्ग निश्चित कर लिया।

"एक दिन साहस करके मैंने अपनी माता से कह दिया कि मैं शादी न करूँगी, मेरे कारण पिता जी परेशानी न उठावें, और मैं उन्हें आश्वासन देती हूँ कि कोई ऐसा काम न करूँगी, जिससे उनका नाम कलंकित हो। माताजी ने रो रोकर मुझे समझाया कि उनके कुल में ऐसी अनरीति कभी नहीं हुई। पिताजी बहुत नाराज हुये। लेकिन मैं अपने निश्चय पर अटल रही। मेरे घर के पास ही मेरी एक सखी रहती थी, जो मेरे साथ पढ़ती भी थी। प्रभा के पिता बड़े अमीर थे, और बड़े लाड़ प्यार से उसका पालन पोषण कर रहे थे। प्रभा से मेरी बड़ी घनिष्ठता थी, और प्रायः नित्य मैं उसके घर जाती थी।

"प्रभा को एकाएक नृत्य सीखने का शौक हुआ। उसके पिता ने एक सुयोग्य शिक्षक मुकर्रर कर दिया। प्रभा जो कुछ अपने मास्टर से सीखती, वह मुझे सिखा देती। बड़ी सरलता से मैं सारवती जाती। प्रभा जो कुछ सीखती उसे घंटों अभ्यास करने पर भी ठीक ठीक अदा न कर पाती, लेकिन मैं जरा देर के अभ्यास के बाद ही इतने ठीक ढंग से अदा कर देती कि वह दंग रह जाती। बात यह थी कि मुझमें स्वाभाविक प्रतिभा थी जो हल्का-सा सहारा पाकर विकसित होती जा रही थी।

"एक बार प्रभा के बहुत जिद करने पर मुझे उसके मास्टर साहब के सामने नाचना पड़ा, वह बड़े प्रसन्न हुए। प्रभा ने अपने पिता से मेरी सिफारिश की और उनकी इच्छानुसार उन्होंने मास्टर साहब को मुझे भी शिक्षा देने का आदेश दे दिया। तब, मास्टर साहब मुझे भी नियमित रूप से शिक्षा देने लगे। दिन प्रति दिन मैं उन्नति करती गई। मेरे पिता को खबर हुई, तो उन्होंने आपत्ति की। पिताजी पुरातन संस्कारों में तो अवश्य पले थे, किन्तु आधुनिक सभ्यता की प्रगति से अनभिज्ञ न थे। थोड़ी-सी बहस के बाद वह मान गये। अनेक सार्वजनिक प्रतियोगिताओं में मैंने भाग लिया और हर बार सर्व प्रथम रही। मुक्त कंठ से लोगों ने मेरी प्रशंसा की। मेरी ख्याति बढ़ती गई, और लोग मुझे प्रथम श्रेणी की नर्तकी मानने लगे। तब अनेक कलाकार मेरे निकट एकत्र हुए, और इस बात की चर्चा छिड़ी कि मेरी कला का प्रदर्शन समग्र देश में होना चाहिए। एक योजना तैयार की गई। प्रभा के पिता ने इस योजना का खुले दिल से समर्थन किया और आवश्यक धन भी दे दिया। इस तरह हमारी कम्पनी बन गई। मेरी कम्पनी शीघ्र ही चल निकली, और आज उसकी जो स्थिति है उससे आप भली भाँति परिचित हैं। मेरी बहिनें और मेरे भाई पूरी निश्चिन्तता से विद्याध्ययन कर रहे हैं। पिताजी अब भी वही पुराने क्लर्क हैं,

उनके ऊपर एक बड़ी गृहस्थी का भार था। स्वयं, पत्नी, एक विधवा बहिन, दो लड़के और चार लड़कियाँ—इतने प्राणी थे उनके परिवार में। वेतन बहुत मामूली था। काम बड़ी कठिनाई से चलता था। सबसे बड़ी लड़की मैं ही थी। मुझे शिक्षा दी जा रही थी इस विचार से कि शायद बाद में दहेज से बचत हो जाय। लेकिन जब मैं सयानी हुई, तो यह विचार भ्रम सिद्ध हुआ। मेरे लिए वर की तलाश में पिताजी जहाँ कहीं जाते, दहेज की रकम सुनकर हैरान हो जाते और निराश होकर लौटते। उनकी लड़की सुन्दर है, सुशिक्षित है—इस बात में किसीने दिलचस्पी जाहिर नहीं की। किसी को उनसे जरा भी सहानुभूति नहीं हुई। माता पिता दोनों हर समय उदास रहते, और अपने असीम दुर्भाग्य का रोना रोते। यह सब मैं देखती-सुनती और एकान्त में चुपचाप आँसू बहाती। अक्सर जी में आता कि आत्म-हत्या कर लूँ। लेकिन मैंने सुन रखा था कि इस जन्म में आत्म-हत्या करने से अगले जन्म में भूत बनना पड़ता है। चुड़ैल बनने के विचार से मैं काँप उठती और मेरे साहस का अन्त हो जाता। आखिर बहुत सोचने विचारने के बाद मैंने अपना मार्ग निश्चित कर लिया।

"एक दिन साहस करके मैंने अपनी माता से कह दिया कि मैं शादी न करूँगी, मेरे कारण पिता जी परेशानी न उठायें, और मैं उन्हें आश्वासन देती हूँ कि कोई ऐसा काम न करूँगी, जिससे उनका नाम कलंकित हो। माताजी ने रो रो कर मुझे समझाया कि उनके कुल में ऐसी अनरीति कभी नहीं हुई। पिताजी बहुत नाराज हुए। लेकिन मैं अपने निश्चय पर अटल रही। मेरे घर के पास ही मेरी एक सखी रहती थी, जो मेरे साथ पढ़ती भी थी। प्रभा के पिता बड़े अमीर थे, और बड़े लाड़ प्यार से उसका पालन पोषण कर रहे थे। प्रभा से मेरी बड़ी घनिष्टता थी, और प्रायः नित्य मैं उसके घर जाती थी।

"प्रभा को एकाएक नृत्य सीखने का शौक हुआ। उसके पिता ने एक सुयोग्य शिक्षक मुकर्रर कर दिया। प्रभा जो कुछ अपने मास्टर से सीखती, वह मुझे सिखा देती। बड़ी सरलता से मैं सीखती जाती। प्रभा जो कुछ सीखती उसे घंटों अभ्यास करने पर भी ठीक ठीक अदा न कर पाती, लेकिन मैं जरा देर के अभ्यास के बाद ही इतने ठीक ढंग से अदा कर देती कि वह दंग रह जाती। बात यह थी कि मुझमें स्वाभाविक प्रतिभा थी जो हल्का-सा सहारा पाकर विकसित होती जा रही थी।

"एक बार प्रभा के बहुत जिद करने पर मुझे मास्टर साहब के सामने नाचना पड़ा, वह बड़े प्रसन्न हुए। प्रभा ने अपने पिता से मेरी सिफारिश की और उनकी इच्छानुसार उन्होंने मास्टर साहब को मुझे भी शिक्षा देने का आदेश दे दिया। तब, मास्टर [illegible] मुझे भी नियमित रूप से शिक्षा देने लगे। दिन प्रति दिन, मैं [illegible] करती गई। मेरे पिता को खबर हुई, तो उन्होंने आपत्ति की। [illegible] पुरातन संस्कारों में तो अवश्य पले थे, किन्तु आधुनिक [illegible] प्रगति से अनभिज्ञ न थे। थोड़ी-सी बहस के बाद वह मान गये। [illegible] सार्वजनिक प्रतियोगिताओं में मैंने भाग लिया और हर [illegible] रही। मुक्त कंठ से लोगों ने मेरी प्रशंसा की। मेरी [illegible] और लोग मुझे प्रथम श्रेणी की नर्तकी मानने लगे। [illegible] कार मेरे निकट एकत्र हुए, और इस बात की [illegible] कला का प्रदर्शन समग्र देश में होना चाहिए। [illegible] गई। प्रभा के पिता ने इस योजना का मुझे [illegible] आवश्यक धन भी दे दिया। इस तरह हमारी [illegible] कम्पनी शीघ्र ही चल निकली, और आज [illegible] आप भली भाँति परिचित हैं। मेरी बहिनें [illegible] से विद्याध्ययन कर रही हैं। पिताजी अब [illegible] हैं।

लेकिन अब उनका काम बहुत हलका हो गया है, क्योंकि मैं प्रति मास उनके पास एक अच्छी-खासी रकम भेज देती हूँ। मेरा समस्त परिवार मेरे ऊपर गर्व करता है। मुझे भी अपने ऊपर गर्व है, सबसे अधिक, इस बात पर कि मैंने अपने पूज्य पिता के नाम को किसी तरह कलंकित नहीं किया।"

"सचमुच आपको बड़े कष्ट झेलने पड़े। यह संसार कठिनाइयों का रणस्थल तो है ही। किन्तु वही व्यक्ति कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करता है, जो उनसे डटकर लड़ता है। और मुझे इस बात की खुशी है कि इसी डटकर लड़ने की बदौलत विजय आज आपके आगे चल रही है।"

"मैं जानती हूँ कि विजय आज मेरे साथ है। फिर भी न जाने क्यों मेरे मन में एक सूनापन है, एक खटका है। और कभी-कभी तो मुझे ऐसा आभास होने लगता है कि यह निर्मम अज्ञात दुःख जीवन के अन्त तक मेरे साथ रहेगा।"

उसके ये शब्द हवा में गूँज उठे। और ऐसा जान पड़ा जैसे उनकी ध्वनि के भार से समस्त वायुमण्डल एकाएक भारी हो उठा। मेरा मन भी भारी हो गया। जीवन और उसका समस्त व्यापार निरर्थक प्रतीत होने लगा। सचमुच यह सारा जगत्, यह सारा जीवन-जाल एक महान् विडम्बना ही तो है!

सहसा वह हँस पड़ी। निविड़ अंधकार में मानो बिजली चमक उठी। चौंककर मन उसकी ओर देखा। मुस्कराकर उसने भी देखा मेरी ओर, और उसकी आँखों ने तुरन्त बता दिया मुझे उसकी हँसी का भेद। हाँ, यही तो है एक सहारा जिसे पकड़ कर मानव चलता जाता है जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ पर।

"आठ, पांच बज गए!" उसने अपनी घड़ी देखकर कहा—"अब वापस चलना चाहिए।"

"अच्छी बात है। माँझी!"

"सरकार!"

"नाव किनारे लगाओ।"

"बहुत अच्छा।"

और हमारी डोंगी तट की ओर चल पड़ी।

× × ×

उसीके साथ मैं थियेटर पहुँचा। वह अपने साथियों से जा मिली, और मैं अव्वल दरजे की प्रथम पंक्ति में बैठ गया।

ठीक समय पर नृत्य आरम्भ हुआ। उसकी कला पहुँच गई अपनी पराकाष्ठा पर। वह नृत्य कर रही थी पूरी तन्मयता से। किन्तु रह-रह कर मुझे ऐसा जान पड़ता जैसे वह मेरी ओर देख रही है, केवल मेरे लिए नृत्य कर रही है। क्या यह मेरा भ्रम था, मेरी मूर्खता थी, मेरा अहंभाव था?

प्रोग्राम समाप्त हो गया। दर्शकों की भारी भीड़ बाहर उमड़ पड़ी। मैं भी बाहर निकला खोया हुआ-सा, मन मुग्ध-सा। प्रत्येक व्यक्ति की जबान पर प्रेमलता की तारीफ थी।

भीड़ छट गई। अपनी कार के पास खड़ा मैं अर्द्ध-चेतना की दशा में टहलने लगा। अपने दल के साथ वह बाहर आई। मुझे देखकर, दल से अलग होकर, लपक कर वह मेरे पास आ पहुँची।

"बधाई!"

"धन्यवाद!"

"आज कल से बेहतर रहा!"

"जानती हूँ, और इसके कारण से भी अपरिचित नहीं हूँ!"

मेरी ही कार में वह बैठ गई। मैं भी उसकी बगल में बैठ गया।

"कहाँ चलूँ, हुजूर!"

"ग्रिम्पसेज होटल।"

"बहुत अच्छा, हुजूर।"

कार चल पड़ी।

"क्या है वह कारण ?"

"कारण ! आप हैं वह कारण।"

बाढ़ आ गई आनन्द की। उछलने लगा मेरा हृदय। और ऐसा जान पड़ा मुझे, जैसे इतना आनन्द मैं अपने पास रख न सकूँगा, हजम न कर सकूँगा। सहसा एक मूर्ति मेरे सामने आई और गायब हो गई। मैं सहम गया। आनन्द दूर खिसकने लगा। वह चुप थी। मैं भी चुप था। वह मुझे तौल रही थी। मैं भी अपने ही को तौल रहा था।

होटल आ गया। कार रुकी। वह उतर पड़ी। मैं भी उतर पड़ा।

"अब इजाजत दीजिए।"

"रुकिए। खाना खाकर जाइयेगा।"

"इस समय माफ कीजिये।"

"नहीं, साहब, आपको रुकना पड़ेगा।"

"अच्छी बात है।"

प्रेमलता और उसके दलवालों के साथ ही मैंने भोजन किया। भोजन के बाद वह लॉन की ओर चली। मैं भी साथ था। एकाएक रुककर उसने कहा—"जानते हैं, मैंने आपको इस समय क्यों रोका था ?"

"नहीं।"

"एक बात आपसे कहना चाहती थी।"

"क्या है वह बात ?"

"मैं चाहती हूँ कि आप हमेशा मेरे साथ रहें, और इसके लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

आ गई मंजिल सामने। लेकिन मेरे पैर उखड़ गए। हृदय मचला, और मुझे उत्कट इच्छा हुई कि उसे बाहु-पाश में बाँध लूँ। लेकिन मैं मूर्तिवत् खड़ा रह गया।

"मेरे लिए यह असाम सौभाग्य की बात होगी," किसी तरह मैंने कहा—"लेकिन ।"

"लेकिन क्या?"

मैं चुप रहा।

"इस समय आप जवाब नहीं दे सकेंगे? अच्छा कल सही। आइयेगा न कल?"

"जरूर आऊँगा।"

"नमस्कार!"

"नमस्कार!"

वह तेजी से चली गई। मैं धीरे-धीरे कार की ओर बढ़ा।

नहीं कह सकता किस तरह मैं घर पहुँचा। घर के पोर्टिको में ज्यों ही कार रुकी कमला बाहर निकल आई। किसी तरह कार से उतर कर मैं सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। वह समीप आ गई।

"इतनी देर तक कहाँ रह गए?"

"एक मित्र से मिलने चला गया था।" सिर झुकाये हुए मैंने उत्तर दिया।

"खाना खराब हुआ जा रहा है। चलो खा लो।"

"नहीं खाऊँगा। एक दावत में शरीक होकर आ रहा हूँ।"

"कहकर गए होते तो क्या बुराई हो जाती?"

कोई उत्तर नहीं दिया मैंने। सीधे पुस्तकालय में जा पहुँचा, और रोशनी को रोक कर एक आरामकुर्सी पर लेट गया। ओह! यह क्या कर डाला मैंने? क्या मैं शरीक हुआ एक ऐसे खेल में जिसमें भाग लेना उचित नहीं था? क्या सचमुच अनुचित था भाग लेना?

मेरा चित्र का एक दूसरा पहलू नहीं है ? कमला और दो बच्चे ! कमला सुशील पत्नी है, और मैं उसका सम्मान करता हूँ । किन्तु मुझे उससे वह चीज नहीं मिली, जिसके लिए मेरा हृदय एक युग से तड़प रहा है । आज वह चीज मुझे एक दूसरी जगह मिल रही है । तो क्या मैं उसे ठुकरा दूँ ? उचित है उसे ठुकरा देना ? नहीं, नहीं । कमला और बच्चों के लिए बहुत काफी पैदा कर चुका हूँ । उन्हें त्यागकर सुगमता से चला जा सकता हूँ, और इससे उन्हें कोई कष्ट भी न होगा । कमला चतुर स्त्री है, और यथेष्ट धन छोड़ जाऊँगा उसके लिए । किन्तु इस तरह स्त्री और बच्चों का त्याग देना क्या उचित है ? नहीं, नहीं । यह भी अनुचित है, वह भी अनुचित है । तब उचित क्या है ? आह ! कैसी विकट समस्या है !

रात भर मैं सो नहीं सका । कभी लेटता, कभी बैठता, कभी टहलता ।

सवेरे साढ़े आठ बजे मैं फिर रिलायंस होटल पहुँच गया । उस समय प्रेमलता अभ्यास कर रही थी । एक कमरे में बैठकर मैं उसकी प्रतीक्षा करने लगा । आध घंटे के बाद वह आई । मैं उठ खड़ा हुआ । मेरी ओर ध्यान से देखकर उसने कहा—"रात भर नींद नहीं आई ?"

"नहीं ।"

"उत्तर देने आये हैं इस समय ?"

"हाँ ।"

"मैं उत्सुक हूँ सुनने के लिये ।"

"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, प्रेमलता, और तुम्हें सब कुछ अर्पण कर देने को तैयार हूँ ।"

"लेकिन ?"

"एक बात है ...

'क्या है वह ?"

"मैं विवाहित हूँ। मेरी स्त्री जीवित है, और मेरे दो बच्चे भी हैं।"

प्रमलता गिर पड़ी एक कुरसी पर, और ऐसा जान पड़ा जैसे वह बेहोश हो जायगी। लेकिन वह बेहोश नहीं हुई। अपने मनोभावों से लड़ती हुई, आँखें फाड़ कर दीवार की ओर ताकती हुई बैठी रही। आँसू की दो बूँदें उसके कपालों पर ढुलक पड़ीं।

"तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।" घुटनों के बल उसके सामने बैठ कर मन कहा—"घरबार त्याग दूँगा, स्त्री और बच्चों को छोड़ दूँगा, और एक मामूली गुलाम की तरह तुम्हारे पीछे लगा रहूँगा।"

"नहीं, नहीं," अवरुद्ध कण्ठ से उसने कहा—"आप का स्थान मेरे निकट नहीं, अपने घर पर है। उठिये, उठिये! पागल मत बनाइये मुझे।"

तब उठकर मैं एक कुरसी पर बैठ गया और फर्श की ओर ताकने लगा।

"क्या सचमुच आप मुझसे प्रेम करते हैं?"

"करता हूँ। ईश्वर साक्षी है।"

"प्रेम बलिदान माँगता है।"

"जानता हूँ, और अपना सब कुछ बलिदान कर देने को तैयार हूँ।"

"इससे भी महान् बलिदान की जरूरत है। तैयार हैं आप?"

"तैयार हूँ।"

"तब भूल जाइये आप मुझे। मैं भी भूल जाने की कोशिश करूँगी आपको।"

लड़खड़ा गई उसकी जबान, और झर झर गिरने लगे उसकी आँखों से आँसू। मैं भी नहीं रोक सका अपने आँसू।

७ —र्द

सहसा आँखें पोंछकर गम्भीर स्वर में उसने कहा—"वादा कीजिये कि आप मुझसे कभी नहीं मिलेंगे, अपना कारू-बार देखेंगे, अपनी स्त्री और बच्चों की देख-भाल करेंगे।"

मैं चुप रहा।

"कीजिये वादा।"

"करता हूँ।"

"ईश्वर साक्षी है!"

"हाँ, साक्षी है ईश्वर!"

"बस, नमस्कार!"

"नमस्कार!"

वह चली गई तेज़ी से। मैं भी लड़खड़ाता हुआ बाहर निकला कमरे से। काश मैं मर जाता उसी समय!

अपना वादा प्रभाग रह गर यह चली गई उसी दिन नगर से।

× × ×

कई मास तक मुझे उसकी कोई खबर नहीं मिली। एक दिन मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा—"कलकत्ता। महान् नर्तकी मिस प्रेमलता सख्त बीमार हैं। हृदय रोग से पीड़ित यह एक स्थानीय नर्सिङ्ग होम में पड़ी हुई हैं।" मैं तड़प उठा। तुरन्त जाना चाहिये। जाना चाहिये? नहीं, नहीं। किंतु वह बीमार जो है! और! ऐसी परिस्थिति में एक दिन के लिए वादे को तोड़ देने में हर्ज ही क्या है? नहीं, न

मैं अपने को रोक नहीं सका।

गया। पता लगाकर मैं फौरन

वह थी। प्रसन्नता क

आरामकुरसी पर लेटी

"नमस्कार!"

"नमस्कार!"

"मिस प्रेमलता से मिलना चाहता हूँ।"

"वह तो बहुत बीमार हैं। किसीको उनसे मिलने की इजाजत नहीं है। मैं उनका भाई हूँ।"

"मेरा उनसे मिलना बहुत जरूरी है। मैं उनका एक बड़ा घनिष्ठ मित्र हूँ और बगैर उन्हें देखे यहाँ से जा नहीं सकता।"

"आपका नाम क्या है?"

"महेन्द्र कुमार।"

"अच्छा, ठहरिये।"

वह अन्दर गये और पाँच मिनट के बाद वापस आये।

"जाइये!" दरवाजे की ओर इशारा करके उन्होंने कहा।

धीरे से मैंने कमरे में प्रवेश किया। हाथ जोड़कर उसने नमस्कार किया। मैंने भी हाथ जोड़कर उत्तर दिया और उसे एकटक देखता हुआ खड़ा रह गया। केवल छाया शेष थी प्रेमलता की। कितनी दुर्बल हो गई थी वह! चेहरा पीला पड़ गया था, आँखें गढ़ों में धँस गई थीं।

"बैठिये!" क्षीण स्वर में उसने कहा।

रोग शय्या के समीप पड़ी हुई एक कुरसी पर मैं बैठ गया।

"वादा भूल गये!"

"भूला तो नहीं हूँ।"

"फिर क्या आये हैं आप?"

"दिल से मजबूर होकर।"

"मजबूरी की बात कहना आपको शोभा नहीं देता। आप पुरुष हैं, शक्ति-सम्पन्न हैं। फिर ऐसी कमजोरी क्यों?"

सिर झुकाकर मैं फर्श की ओर ताकने लगा।

"अब तबीअत कैसी है?"

"लड़ रही हूँ। हारूँगी या जीतूँगी, कह नहीं सकती।" और आँसू की दो बूँदें उसके मुरझाये हुए कपोलों पर ढुलक पड़ीं।

मैं दहल उठा।

"भाग्य के अन्दर छिपा हुआ था। भाग्य ने तुम्हें इस तरह फिर मुझसे मिलाकर अच्छा नहीं किया।" आँखें पोंछकर उसने कहा।

"मुझे बड़ा अफसोस है।"

"अगली ट्रेन से घर चले जाइये और फिर कभी मत आइयेगा। अपना वादा न भूलिये। मुझे देखिये। जिन्दा रह रही हूँ या नहीं? नमस्कार!"

"नमस्कार!" सुनकर उठकर मैं जल्दी से बाहर भागा। उस समय मेरी सारी शक्ति उमड़ते हुए आँसुओं की बाढ़ को रोकने में लगी हुई थी।

दूसरे ही दिन मैं घर वापस आ गया। कुछ दिन के बाद मैंने फिर समाचार-पत्रों में पढ़ा—"कलकत्ता। प्रसिद्ध नर्तकी मिस प्रसन्नता का आज प्रातःकाल हृदय की गति रुक जाने के कारण देहावसान हो गया। आप हृदय-रोग से पीड़ित थीं। आपके शोकाकुल परिवार के लिये बड़ी समवेदना प्रकट की जा रही है।" आह! वह चल बसी! मेरे ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। मैं अचेत होकर गिर पड़ा। दो दिन के बाद मुझे होश आया। महीनों मैं बीमार रहा। डाक्टर मेरे मर्ज का पता नहीं लगा सके। धीरे धीरे दृढ़ संकल्प के द्वारा मैं अच्छा होने लगा। अब भला-चंगा हूँ, काम धंधा देखता हूँ, अपनी स्त्री और बच्चों की देख रेख करता हूँ। लेकिन मेरे दिल में एक गहरा घाव है, जो कभी भर नहीं सकता। क्या मैं प्यारी प्रसन्नता को भूल गया हूँ? नहीं, नहीं। क्या मैं उसे कभी भूल सकता हूँ? कभी नहीं। उसी की याद के सहारे तो मेरे शरीर की यह धड़-मशीन चल रही है।

प्रतिकार

अल्हड़ नवयौवन अपनी स्वाभाविक उच्छृंखलता लेकर रामलाल के जीवन में अभी आया ही था, जब उसका पिता बजाज़े की एक छोटी सी दूकान, तीन पक्के मकान और पन्द्रह हज़ार नक़द छोड़कर एक सप्ताह की बीमारी के बाद परलोक सिधार गया। रामलाल ने सन्तोष की साँस ली। उसे मुँह माँगी मुराद मिली।

रामलाल के घर पर रंगरेलियों की महफ़िलें जमने लगीं। मुहल्ले के आवारे उसको दावतों में शरीक होकर उसे अनुगृहीत करने लगे। मदिरा और रूप के हाट में एक मनचले और गाँठ के पूरे ग्राहक की वृद्धि हुई। पेट काट-काटकर जमा किया हुआ धन पानी की तरह बहने लगा।

जिस शरीर में दुर्व्यसनों का राज्य हो, उसमें काम करने की न इच्छा होती है न शक्ति। बजाज़े की चलती हुई दूकान नौकरों के सिपुर्द हुई। दिन प्रति दिन घाटे पर घाटा होने लगा। छः मास के बाद दूकान बंद हो गई।

रामलाल के मार्ग में रो-रोकर अड़चन डालनेवाली उसकी स्त्री कुढ़-कुढ़कर साल भर बाद मर गई। बचा-बचाया यह एक काँटा भी निकल गया। मैदान बिलकुल साफ़ हो गया। तेज़ी से चलनेवाला दौड़ लगाने लगा।

यों तो रूप हाट में बैठनेवाली अनेक सुंदरियों से रामलाल का सम्बन्ध था, किंतु, छोटी बिट्टन पर उसकी विशेष कृपा थी। छोटी बिट्टन पहले सम्पन्न न थी, क्योंकि नृत्य और गायन कला में वह निपुण न

थी। किन्तु रामलाल से परिचित होते ही उसका भाग्य चमक उठा। देखते देखते वह मालामाल हो गई।

यदि कुबेर का धन हो और दावतों में व्यय किया जाय, तो वह भी शायद बहुत दिनों तक न ठहर पाय। फिर पन्द्रह हजार की बात ही क्या है! डेढ़ साल में सब कुछ समाप्त हो गया। अब मकानों की बारी आई।

महाजन दामोदरदास से रामलाल की विशेष घनिष्ठता थी। वह लेन-देन का काम करता था। उसने रामलाल को छोटी बिहन से परिचित कराया था। दामोदरदास ही से रामलाल ऋण लेने लगा। लगभग दो साल के समय में एक के बाद एक रामलाल के तीनों मकान दामोदरदास के पास रेहन हो गये।

अब पश्चात्ताप सताने लगा। महफिल उजड़ गई, दोस्त अपनी अपनी राह लगे। छोटी बिहन की नजर बदल गई। दामोदरदास भी नजर चुराने लगा।

आँखें बन्द करके दौड़नेवाला मुँह के बल गिरा। बाढ़ में आई हुई जवानी, रंग-रंग में डूबा हुआ मन, उद्वेलित तृष्णा और अभाव, विषम परिस्थिति! अंधकार, निविड़ अंधकार! उठता, गिरता रामलाल मार्ग खोजने लगा।

× × ×

विकट घृणा की अग्नि उसके हृदय में धू धू कर रही थी। एक शराबखाने में बैठा हुआ, शराब पीता हुआ, वह आग में ईंधन डाल रहा था। और इसी एक क्रिया में उसके जर्जर शरीर की सारी शक्तियाँ केंद्रित थीं। सोनेवाला जाग पड़ा उस समय जब घर के कोनों में आग लग चुकी थी। किंतु घर से या अपने अस्तित्व से उसे प्रेम न था। रक्षा की चेष्टा वह क्यों करे? अब उसे अवसान ही में जीवन की सार्थकता दिखाई देती थी। इसलिये उसने अग्नि का आह्वान किया।

आज ? हाँ, आज ही, इसी समय ! मित्रता दिखाकर जो शत्रुता करे, उससे बढ़कर नीच और कौन हो सकता है ? ऐसे कपटी मित्र से बदला लेना क्या नाजायज़ है ? जायज़ हो या नाजायज़, दामोदर से बदला तो लेना ही होगा ! और वह रँगी हुई गुड़िया, वह बेवफ़ा, मक्कार, बदज़ात औरत ? वह भी आज मक्कारी और बेवफ़ाई का नतीजा देख लेगी। यह शराब है या निरा पानी ? कुछ नशा नहीं आया। होटलवाला में ईमानदारी नाम मात्र भी नहीं होती। ये दाम तो पूरा वसूल कर लेते हैं लेकिन खालिस माल कभी नहीं देते।

आठवाँ प्याला पीकर, वह फ़र्श की ओर एक टक ताकने लगा। असंगत वाद विवाद, वीभत्स हास-परिहास, बेसुरे तान-आलाप की कर्कश ध्वनियाँ उसके कानों में घुस रही थीं। किंतु वह यह सब कुछ नहीं सुन रहा था। उसे सुनाई देता था केवल प्रज्वलित उस निष्ठुर अग्नि का जो प्रज्वलित थी उसके हृदय में और इसे सुनने में उसे वही आराम मिल रहा था, जो जलते हुए फोड़े पर पुलटिस बाँधने से प्राप्त होता है। इसी हास की प्रतिध्वनियाँ तो उसके विचारों में गूँज रही थीं।

पिताजी कितना ठीक कहते थे, धन पर वैसी ही कड़ी नज़र रखना चाहिये जैसी माँ बाप मकान पर रखते हैं। उनकी सलाह पर चलता, तो यह दिन क्यों देखना पड़ता ! लेकिन क्या रुपया-पैसा ही सब कुछ है, पर आराम कुछ नहीं ? ऐश आराम ? इसमें जो सुख है अन्य किसी वस्तु में नहीं ! किंतु इसी की बदौलत तो आज ? हाँ, धन सब कुछ है—सब कुछ ! और इसका अपहरण करनेवाले शत्रुओं को ? हाँ हाँ ! अभी अभी !

बोतल उठाकर, मुँह से लगाकर वह गट-गट शराब पीने लगा। बोतल खाली हो गई। मुँह बिचकाकर, झुककर, उसने खाली बोतल एक ओर लुढ़का दी। फिर वह उठ खड़ा हुआ और दरवाज़े की ओर चला। एक बार फ़र्श पर पड़े हुए एक शराबी के पैर से उसके लड़खड़ाते हुए पैर की ठोकर लग गई।

"ऊँ ! कौन है ? देखता नहीं ज़रा आराम कर रहा हूँ ! अंधा है क्या ?"

किंतु रामलाल को तो यह भी ज्ञात न हुआ कि उसके पदस्पर्श ने एक सम्यानी को ठोकर लगा दी। फिर उलझता, ना कौन ? अपने ही ध्यान में पैदा की हुई बात में बहता हुआ, लड़खड़ाता हुआ, दरवाज़े पर पहुँचकर वह रुका, फिर गली में उतर पड़ा। सप्तमी के चन्द्रमा का मंद प्रकाश गली में फैला हुआ था। विषाद के भार से दबी हुई वह जान गली मानो उमालें भर रही थी। रामलाल सड़क की ओर बढ़ा।

कई सड़कों पर आध घंटे तक चलकर वह एक सुनसान गली में घुसा और साधारण श्रेणी के एक मकान के सामने पहुँचकर रुका। निर्दिष्ट स्थान यही था। मादक आलस्य और निस्तब्धता की गोद में वह निवास-गृह अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ था। वह दरवाज़े के समीप जाकर रामलाल ने साँकल खटखटाई किंतु कोई उत्तर न मिला। तब दरवाज़े के एक सूराख़ से वह अंदर झाँकने लगा। भीतर सहन में एक लालटेन जल रहा था, किंतु वहाँ कोई न था।

दामोदर यहाँ नहीं है क्या ? सम्भव है, न हो। नहीं, अवश्य होगा। इस समय तो वह नित्य यहाँ रहता है।'

सहसा हास-परिहास की ध्वनियाँ सुनाई देने लगीं।

है, ज़रूर है। अब क्या करना चाहिये ? साँकल खटखटानी चाहिए क्या ? नहीं, यह तो अब ठीक न होगा। जल्दी क्या है ? थोड़ी देर के बाद वह ज़रूर बाहर निकलेगा।

दरवाज़े से हटकर, वह एक ओर चबूतरे पर बैठ गया। एकाएक सामने से दो आदमी ज़ोर-ज़ोर से बात करते हुए आते दिखाई दिये।

ये लोग कौन हैं, और क्यों आ रहे हैं ? होंगे कोई। लेकिन ?

उठकर, वह दीवार से सटकर खड़ा हो गया। वे निकट आ गये। उसका हृदय वेग से धड़कने लगा, हाथ-पैर काँपने लगे। किंतु, वे

आगे बढ़ गये। तब उसकी जान में जान आई। बैठकर, जेब से रूमाल निकालकर, वह मत्थे का पसीना पोंछने लगा।

आधघंटा बीत गया। प्रतीक्षा असह्य हो गई।

अभी तक वह नहीं निकला? नहीं है क्या? है तो वह जरूर। फिर ? साँकल खटखटाऊँ क्या? नहीं नहीं!

उठकर, वह व्यग्रता से टहलने लगा। सहसा साँकरा खुलने की आवाज़ हुई। तुरत रुककर, वह अँधेरे में दबककर खड़ा हो गया।

"ही—ही—ही—ही!"

दरवाजा खुला। प्रकाश का एक स्तंभ बाहर निकलकर, ज़मीन पर लेट गया। फिर दामोदरदास हँसता हुआ बाहर आया। दरवाज़ा तुरत बंद हो गया।

दामोदरदास झूमता हुआ उस ओर चला। धीरे से चबूतरे से उतरकर रामलाल उसके पीछे हो लिया।

"दामोदर!"

चौंककर, रुककर, मुड़कर, दामोदरदास पीछे देखने लगा।

"कौन है?"

"मैं !"

"रामलाल! यहाँ भाई!"

रामलाल कुछ न बोला, उसके सामने खड़ा होकर उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखने लगा।

"तुम फिर नशे में हो, रामलाल! मेरी सलाह मानो, भाई अब यह ढंग छोड़ दो! नहीं तो !"

"नहीं तो क्या होगा! बोल!"

"बिगड़ते क्यों हो जी? मैं तो नेक सलाह दे रहा हूँ और तुम !"

"नेक सलाह दे रहा है! सब कुछ लूटकर—नेक सलाह!"

[illegible] बदल गया।

"इस समय तुम आपे में नहीं हो, इसलिये तुम से बहस करना फ़िजूल है। पता पड़ गया है क्या? अच्छा, यह लो!" जेब में से रुपया निकालकर उसने रामलाल की ओर बढ़ा दिया।

शान्ति से रुककर, रामलाल ने मौका पाकर उसके चेहरे पर रुपया मारा। तीव्र वेग से चक्कर खाकर, दामोदरदास के माथे पर चोट कर, घेरे बनाकर, रक्त में सनकर चाँदी का वह टुकड़ा कमरे के फ़र्श पर गिरा, और झनझनाने लगा।

"सुअर! बदमाश!" दोनों हाथों से माथा पकड़े हुए दामोदरदास तीव्र स्वर में चिल्लाया।

"अभी और है!" जेब से चमकती हुई छुरी निकालकर, रामलाल उसकी ओर झपटा।

"ले!" छुरी चमककर दामोदरदास के छाती में घुस गई।

आँखें फाड़, छाती पर हाथ रखे हुए, वह धम्म से फ़र्श पर गिर पड़ा।

झुककर रामलाल उसकी छाती से छुरी निकालने लगा। तड़पकर दामोदरदास ने दम तोड़ दिया।

छुरी जेब में रखकर, मुस्कराकर रामलाल छोटी चिड़िया के घर की ओर तेज़ी से चला।

दो मिनट में वह उस घर के सामने था। दरवाज़े के समीप जाकर, वह साँकल खटखटाने लगा।

"कौन है?" कई क्षण के बाद कोई बोला।

"मैं हूँ! ज़रा दरवाज़ा खोलो, बड़ा ज़रूरी काम है!"

"क्या काम है? कहाँ से आए हो?"

"खोलो तो! बताता हूँ!"

दरवाज़ा खुला। छोटी चिड़िया की वृद्धा नायिका हाथ में लालटेन लिये सामने खड़ी थी।

"तुम हो भइया !"

"हाँ !" अंदर घुसकर रामलाल बोला।

"कहो, क्या काम है ?"

"ज़रा बिट्टन से मिलूँगा !"

"बिट्टन तो तुमसे मिलना नहीं चाहती !"

"लेकिन मैं तो इस समय ज़रूर मिलूँगा, सिर्फ़ थोड़ी देर के लिये !" वह आगे बढ़ा।

"यह भी कोई बात ! जब एक बार मना कर दिया गया, तो यहाँ आने का तुम्हें क्या अख़्तियार है ?"

किंतु उसने वृद्धा की बातों पर ध्यान नहीं दिया। सहन पार कर, सामने खुले हुये कमरे में उसने प्रवेश किया।

लैम्प के प्रकाश से आलोकित उस कमरे के मध्य में पड़े हुए पलग पर छोटी बिट्टन पान चबाती हुई अस्त-व्यस्त पड़ी हुई थी। रामलाल को देखकर, उठकर वह बोली—"कहो ?"

वह उसकी ओर घूरकर देखने लगा। उसके आरक्त नेत्र देख कर वह सहम गई, किंतु दूसरे ही क्षण वह बिगड़कर बोली—"मुँह में क्या दही जमा है ? क्यों आये हो यहाँ ?"

"यों ही !"

"यों ही ! बेशर्मी की भी कोई हद होती है ! लेकिन, तुम तो !"

"हाँ, अच्छा, तो ले !" जेब से छुरी निकालकर वह उसकी ओर झपटा।

छुरी सीने के पार हो गई। वह मुख से एक शब्द भी न निकाल सकी। तड़पकर, गनगनाकर उसका शरीर निर्जीव हो गया।

एक चीख़ मारकर वृद्धा नायिका बेहोश हो गई।

विकट, अमानुषीय अट्टहास कर रामलाल छोटी बिट्टन के सीने से छुरी निकालने लगा।

छुरा जब में रखकर, वह धीरे धीरे कमरे से बाहर निकला। अब जल्दी किस बात की है !

उस घर से निकलकर वह अपने घर की ओर चला। उस समय उसके हृदय में ठंडक थी, किन्तु सिर चक्कर खा रहा था। उसके आन्दोलित मन के निविड़ अन्धकार में जो ज्योति-शिखा अभी तक दृष्टिगोचर हो रही थी, वह फिर अदृश्य हो गई। आँखें फाड़-फाड़कर वह फिर मार्ग ढूँढ़ने लगा।

< < ×

घर पहुँचकर, दरवाज़ा खोलकर, उसने अन्दर प्रवेश किया। फिर साँकल चढ़ा कर, दियासलाई जला कर, वह सामने कमरे की ओर चला। सहन में पहुँचते ही सलाई बुझ गई। दूसरी सलाई जला कर, वह आगे बढ़ा और कमरे में प्रवेश किया। जलती हुई सलाई एक ओर फेंक कर फ़र्श पर फेंककर, वह चारपाई पर अस्त-व्यस्त लेट गया। कमरे का अंधकार अत्यधिक प्रगाढ़ हो गया। भीतर बाहर अंधकार—प्रगाढ़ अंधकार। चेतना अँगड़ाई लेने लगी। शून्य का परदा हटने लगा। भय उठ खड़ा हुआ। हृदय वेग से धड़कने लगा, हाथ-पैर काँपने लगे, पसीना आ गया। अंधकार के परदे में अंगारों की तरह चमकती हुई दो बड़ी-बड़ी आँखें उसकी ओर घूरने लगीं। घबराकर, उसने आँखें बंद कर लीं। किंतु उसके मस्तिष्क-प्रदेश में भी वही आँखें दृष्टिगोचर होने लगीं। उसने आँखें खोल दीं। फिर वही आँखें !

वह चारपाई से उतरकर, उसने दियासलाई जलाई। जलती हुई सलाई ऊपर उठाये हुये सामने ताक के समीप जाकर उसने लालटेन जलाई। धुँधले प्रकाश से कमरा भर गया। छत और दीवारों पर मकड़ियों के जाले लगे हुये थे, ताकों और आलमारियों पर गर्द की तह जमी हुई थी, फ़र्श मैले कपड़ों और कूड़ा करकट से लदा पड़ा था।

ऐसा जान पड़ता था, मानो वह वेदना व्यस्त भ्रमरा अपने अच्छे दिनों की याद में आहें भर रहा हो! एक वह दिन भी था जब वह खिल-खिलाकर हँसता रहता था।

वे तीव्र आँखें अदृश्य हो गईं। तब उसे किंचित संतोष प्राप्त हुआ। उस ओर ताक़ के समीप जाकर, उस पर रखे हुये दर्पण में वह अपनी मुखाकृति देखने लगा। कैसी भयंकर हो गई थी उसकी मुखाकृति! खून की छोटी छोटी सैकड़ों बूँदें चेहरे पर जमी हुई थीं। चढ़ी हुई आँखें भी आरक्त थीं। अधिक देखना असह्य हो गया। उसने आँखें नीची कर लीं। तब उसकी दृष्टि हाथों की ओर गई। दोनों हाथ खून से रँगे हुये थे। उस अमानुषीय कृत्य की भयंकरता मूर्ति-मान होकर उसकी आँखों के सामने खड़ी थी। उसके पैर लड़खड़ा गये। उसने दीवार का सहारा लेकर आँखें बंद कर लीं। अद्भुत मानव-जीवन! सार्थकता-असार्थकता की अद्भुत विडम्बना! सार्थक वह था या वह!

बड़ी देर तक वह उसी तरह खड़ा रहा। फिर आँखें खोलकर, जेब में हाथ डालकर, छुरा निकालकर, उलट-पलटकर वह उसे देखने लगा। सहसा उसकी दृष्टि जम गई। सिनेमा के चित्र-पट की भाँति छुरी के रक्त लिप्त परदे पर उस भयंकर घटना का चित्र खिंच गया—जमीन पर पड़ा हुआ घायल दामोदरदास आँखें फाड़े हुये उसकी ओर देख रहा था। उन आँखों का वह विकट भाव! देखते देखते वह चित्र हट गया, दूसरा चित्र सामने आया—अपनी शयनागार में पलंग पर छोटी बिन्नी तड़प रही थी। सीने से खून के फव्वारे निकल निकलकर इधर उधर बिस्तर पर, फर्श पर गिर रहे थे। वह ज्यादा न देख सका, आँखें बंद करके फर्श पर बैठ गया। उसका सिर घूमने लगा। कमरा हिलने लगा। आँखें खोलकर, वह उठने की कोशिश करने लगा। उसके पैर लड़खड़ाये, वह फर्श पर गिर पड़ा।

"दर्शन करोगे?"

"हाँ, भाई। आखिर मैं भी तो इंसान ही हूँ, और देखनेवाली आँखें रखता हूँ।"

"दर्शन कराने को तो मैं तैयार हूँ, लेकिन ...।"

"लेकिन क्या?"

"एक डर है।"

"किस बात का डर?"

"कहीं तुम भी फिसल पड़ो, तो?"

विनय ने फिर कहकहा लगाया। भुवन भी हँसने लगा।

"अरे, नहीं भाई, नहीं। डरो मत। मेरा दिल अब बूढ़ा हुआ जा रहा है।"

"लेकिन मैंने सुना है कि बुढ़ापे में रस की लालसा और भी बढ़ जाती है।"

"हा हा-हा! यह बात तो है, यार! तब रहने दो।"

"नहीं, तुम्हें चलना पड़ेगा।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।"

"वाह! चलोगे कैसे नहीं? मैं खींच ले चलूँगा।"

"कब?"

"आज ही।"

"अच्छी बात है।"

तब वह वहीं चुप रहकर, आरामकुरसी पर लेटकर, विनय राबर्ट बर्न्स का एक प्रेम-गीत गाने लगा।

भुवन झूमने लगा। गन्ध बरसने लगा। मधुर संगीत की कलकल करती लहरें, चन्द्रमा की रजत रश्मियों में अठखेलियाँ करती हुई सरिता की चंचल लहरों की भाँति। खिल उठा हृदय। उन्मत्त हो गया प्रेम। और भुवन ने देखा, इतना रस पीकर भी वह तृप्त न हो सका। उसे तो और चाहिए, और ।

टूट गया समाँ। चुप हो गया विजय। कुछ आश्चर्य से, कुछ असन्तोष से देखा भुवन ने उसके चेहरे की ओर। धुँआ सा पुत गया था उस चेहरे पर। हँसकर उठ खड़ा हुआ विजय। लेकिन हँसी हटा नहा सकी धुँए के परदे को। भुवन कुछ समझ नहीं सका। समझने की कोशिश भी उसने नहीं की।

"अभी क्या जल्दी है, विजय !"

"एक काम याद आ गया। कै बजे चलोगे ?"

"पाँच बजे।"

"मेरी तरफ आओगे, या मैं खुद आ जाऊँ ?"

"तुम्हीं आ जाना।"

"अच्छी बात है।" वह तेजी से चला गया।

दस दिन पहले ही की तो बात है। दूर के एक रिश्तेदार के घर दावत थी, अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति निमंत्रित थे। अपने पिता के साथ वह भी आई थी। और भुवन भी गया था। ड्राइंगरूम म तमाम मेहमानों क सामने उसके रिश्तेदार ने उन लोगों से उसका परिचय कराया था। मिस्टर रामकृष्ण वर्मा ! मिस लक्ष्मी वर्मा ! मिस्टर भुवनेश्वरप्रसाद सिनहा ! और फिर उसने उसकी ओर आँख भरकर देखा था। उस समय वह भूल गया था कि कहाँ है, क्या कर रहा है ? ओह, वह रूप, वह तन्मयता, देखते ही जाने की वह प्रबल स्पृहा ! उसकी हँसी उड़ जाती उस समय, अगर मिस्टर वर्मा यह न कहते—बैठिए, मिस्टर सिनहा।

चार क़दम, सिहर कर, उसी सोफे पर उनके समीप वह बैठ गया। तब मिस्टर वर्मा ने एक कुतुब की तरह तरह-तरह के प्रश्न उसके सबध में किए। बड़े अदब से उसने उत्तर दिए। फिर कुछ देर तक अपने और लक्ष्मी के विषय म बातें करने के बाद उन्होंने कहा था—"किसी दिन मेरे यहाँ तशरीफ़ ला आइएगा, मिस्टर सिनहा !"

"ज़रूर, हाज़िर होऊँगा ।"

दावत के समय और उसके बाद भी वह लक्ष्मी के समीप ही बैठा रहा, लेकिन उससे बात करने का साहस नहीं कर सका । अन्य स्त्रियाँ वहाँ मौजूद थीं, और अन्य पुरुष उनसे बिना किसी झिझक के बात कर रहे थे । लेकिन, उसके अन्दर न जाने क्या, ऐसा संकोच उठ खड़ा हुआ कि उसकी ज़बान पर ताला लग गया । ऐसा जान पड़ता था, जैसे उसके ऊपर टोना हो गया हो, जादू फिर गया हो । लेकिन उसकी आँखें रह-रहकर लक्ष्मी के असाधारण रूप में उलझ जातीं, और सचेत होकर वह उन्हें हटा लेता । लक्ष्मी ने भी देखा था उसको । और कई बार, और हर बार उसे ऐसा जान पड़ा था जैसे एक तीर उसके अन्दर घुसकर उसके हृदय में चुभ गया हो ।

महफ़िल बरख़ास्त हुई । सारे मेहमान विदा हो गए । वह भी विदा लेकर सीधी तरह घर पहुँच गया, दिल में एक मीठा दर्द लेकर । कैसी विचित्र दशा थी उस समय उसकी ! कितने रंगीन सपने उसने उस रात को देखे, कितने सुन्दर महल उठाए और गिराए । कल्पना ने बाँध तोड़े, आशा-लता लहलहाई और फूलों से लद गई, हृदय ने अपनी निधि पहिचानी और मन ने स्वीकार किया—'हाँ, यह भी एक मंज़िल है, और मामूली मंज़िल नहीं ।' रात आँखों में कट गई । दिन संकल्प विकल्प और तैयारियाँ करने में बीत गया । और—

संध्या के समय सज धजकर वह मिस्टर रामकृष्ण वर्मा, बैरिस्टर, के बँगले में पहुँच गया । नौकर अन्दर इत्तला करने गया, वापस आया और उसे ड्राइंगरूम में लिवा ले गया । एक सोफ़े पर बैठकर वह इधर उधर दृष्टि दौड़ाने लगा । वहाँ की प्रत्येक वस्तु में उसे अपूर्व सुरुचि और सौंदर्य दृष्टिगोचर हुआ । फ़र्श, फ़र्नीचर, तस्वीरें, खिलौने, गुलदान, प्याला, तमाम चीज़ें इस तरह सजी हुई थीं जैसे किसी सोने के हार में नग जड़े हों । कोई कमरे में आया । भुवन ने

उधर दृष्टि उठाई। लक्ष्मी ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। भुवन ने मुस्कराकर नमस्कार का उत्तर दिया। लक्ष्मी मुस्कराती हुई उसकी ओर बढ़ी। भुवन उठ खड़ा हुआ।

"बैठिए", लक्ष्मी ने बड़े मधुर स्वर में कहा।

वह बैठ गया। वह भी बैठ गई।

"पापा घर पर नहीं हैं।"

"मुझे बड़ा अफसोस है। मेरा तो खयाल था कि इस वक्त मौजूद होंगे और उनके दर्शन कर सकूँगा।"

"थोड़ी देर में आ जायँगे।"

"बड़ी खुशी की बात है।"

"चाय मँगवाऊँ?"

"क्यों तकलीफ कीजिएगा?"

"तकलीफ की तो इसमें कोई बात नहीं।" उसने घंटी बजाई।

एक सेवक तुरन्त हाजिर हुआ।

"चाय लाओ।"

"बहुत अच्छा।" सेवक चला गया।

"मुझे इस बात का बड़ा अफसोस रहा," भुवन ने सकुचाते हुए कहा,—"कि कल मैं आपसे बात नहीं कर सका।"

"मैं भी तो आपसे बात नहीं कर सकी।"

भुवन सोचने लगा कि अब क्या कहे। लक्ष्मी भी चुप बैठी रही। कई मिनट बीत गए। निस्तब्धता अशिष्टता प्रतीत होने लगी। भुवन को एक बात सूझ गई।

"आप प्यानो बजाती हैं?"

"जी हाँ, थोड़ा-बहुत।"

"अगर आप इसे मेरी धृष्टता न समझें, तो कोई चीज सुनाने की कृपा करें।"

"संगीत की जानकारी मुझे बहुत थोड़ी है। आप सुनकर हँसेंगे।"

"लेकिन मैं तो बिलकुल कोरा हूँ।"

लक्ष्मी हँस पड़ी। भुवन झेंप गया। लक्ष्मी ने उसके चेहरे की ओर देखा, गम्भीर हो गई, उठी और प्याना के स्टूल पर जा बैठी सामने बाड पर एक गीत के पृष्ठ सजाकर, वह बाजे के परदों पर अँगुलियाँ दौड़ाने लगी। शुरू हो गई छाया और प्रकाश की आँख मिचौनी। होने लगी रंग की रिमझिम वृष्टि। खिंचने लगे चित्र पर चित्र। थिरकने लगी निरुपमोहिनी कला। झूमने लगा भुवन।

सेवक सजा गया चाय का सामान एक मेज़ पर। किसीने देखा नहीं उसकी ओर। बन्द थीं भुवन की आँखें। और तल्लीन थी लक्ष्मी संगीत की सुमधुर लहरें बिखेरने में।

समाप्त हो गया गीत। उठ खड़ी हुई लक्ष्मी। भंग हो गई आत्म-विस्मृति की दशा। खोलीं भुवन ने आँखें। लक्ष्मी आई उसके समीप। प्रशंसा की मूर्ति बन गया भुवन।

"कितना अच्छा बजाती हैं आप! फिर भी कहती थीं कि बहुत कम जानती हैं!"

"अभी तो मैं सीख रही हूँ, विश्वास कीजिए।"

"मेरा तो खयाल है कि अब कुछ सीखना बाकी नहीं रहा, लेकिन आप कहती हैं, तो मान लेता हूँ।"

यह खाइये, वह खाइये! बार-बार इसरार करके लक्ष्मी उसे मेवे, फल और केक खिलाने लगी। फिर चाय पी गई। लक्ष्मी ने घंटी बजाई। सेवक आया और मेज साफ कर गया। अधिक रुकना उचित न समझ कर, भुवन इजाज़त माँगने की बात सोचने लगा। सहसा हार्न बजा, और मोटर के आने और रुकने की आवाज आई।

"पापा आ गये!" लक्ष्मी ने कहा।

"बहुत अच्छा हुआ। मेरी बड़ी इच्छा थी कि उनसे भी मुलाक़ात हो जाय।"

एक मिनट में रामकृष्ण कमरे में आये। भुवन ने उठकर नमस्कार किया।

"हलो! मिस्टर सिन्हा! नमस्कार! बड़ी कृपा की आपने।"

फिर उसके समीप बैठकर वह बड़ी आत्मीयता से बात करने लगा। उनसे विदा लेकर जब भुवन अपने घर की ओर चला, तो उसके आनन्द और सन्तोष का ठिकाना न था।

वहाँ प्राय नित्य ही अब वह जाने लगा। लक्ष्मी खुलकर मिलती। दोनों के व्यक्तित्व एक दूसरे की थाह लेते, परस्पर घुलते मिलते। अक्सर बहस छिड़ जाती किसी राजनैतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक विषय पर। विचारों का खुलकर आदान प्रदान होता। मत भेद भी होता, सहमति भी।

× × ×

विजय के साथ भुवन जब लक्ष्मी के घर पहुँचा, तो साढ़े पाँच बज चुके थे। एक कार पोर्टिको में तैयार खड़ी थी। एक सेवक से भुवन ने पूछा—"नहींजी घर पर हैं?"

"हैं तो, सरकार। लेकिन कहीं जा रही हैं।"

"कहीं जा रही हैं?"

"हाँ, सरकार! इत्तला करूँ?"

"नहीं रहने दो। कहीं जा रही हैं, तो इत्तला करना ठीक न होगा।"

"जैसी सरकार की मर्ज़ी।"

"चलो चलें, भुवन!" विजय ने कहा, "इस वक्त आना ठीक नहीं हुआ।"

"हाँ, चलो।"

दोनों सीढ़ियों की ओर बढ़े।

"ज़रा सुनिये सरकार! पाँच मिनट कम आइये। निकलती ही होंगी। शायद मेरे ऊपर नाराज़ हों कि पता क्यों दिया, मुझे इसकी क्यों नहीं दी।"

"अच्छी बात है," भुवन ने प्रसन्न होकर कहा।

लौटकर वे बरामदे में पड़ी हुई आरामकुरसियों पर बैठ गये। इधर उधर दृष्टि दौड़ाकर हर चीज़ को विजय देखने लगा इस तरह, जैसे वहाँ के समस्त वातावरण से घनिष्ठतम परिचय प्राप्त कर लेने के लिये उत्सुक हो उठा हो।

लक्ष्मी बाहर आई। दोनों उठ खड़े हुए। बड़े ध्यान से देखने लगा विजय उसकी ओर।

"नमस्ते!" लक्ष्मी ने कहा भुवन की ओर देखकर।

"नमस्ते!"

फिर कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा लक्ष्मी ने विजय की ओर।

"आप हैं मिस्टर विजयकुमार। मेरे सहपाठी और मित्र हैं।"

"नमस्ते!"

"नमस्ते!"

"आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई।" मुस्कराकर लक्ष्मी ने कहा।

"मुझे भी बड़ी खुशी हुई।"

"शायद आप कहीं जा रही हैं!" भुवन ने कहा।

"हाँ, जा तो रही हूँ। लेकिन बैठिये।"

"जहाँ कहीं जा रही हों, जाइये। हम लोग किसी दूसरे दिन आयेंगे।"

"बड़ा कष्ट हुआ आप लोगों को।"

"नहीं, नहीं, कष्ट की इसमें कोई बात नहीं।"

विदा लेकर वे एक ओर चले गये। लक्ष्मी कार की ओर बढ़ी।

भुवन और विजय बाहर निकले एक फाटक से। लक्ष्मी की कार निकल गई दूसरे फाटक से।

"कहो, विजय, क्या राय है?"

"लक्ष्मी साक्षात् लक्ष्मी है।"

"मजाक कर रहे हो?"

"नहीं, भुवन, मजाक नहीं कर रहा हूँ," विजय ने हँसकर कहा—"ऐसी सुन्दर, नम्र और सभ्य नवयुवती मैंने आज तक नहीं देखी। तुम बड़े भाग्यवान हो, भुवन!"

भुवन का हृदय सन्तोष से भर गया। विजय का समर्थन पाकर उसे गर्व हुआ अपनी सम्मति पर। किन्तु विजय के चेहरे पर फिर घुल गया धुँआ ज़रा और गाढ़ा होकर।

एक चौरास्ता आ गया।

"मैं तो उधर जाऊँगा, भुवन!"

"क्यों?"

"एक काम है।"

"फिर कर लेना वह काम। इस समय चलो मेरे साथ!"

"नहीं, यार, ज़रूरी काम है!"

"अच्छा!"

दोनों दो रास्तों पर चले गये।

विजय इस तरह भागा जा रहा था जैसे अपने ही से भागने की कोशिश में भाग रहा हो। किन्तु उसका वह अपनापन उसके कदम ब कदम उसमें घुला मिला उसके सिर पर सवार चला जा रहा था। वह सिद्ध नहीं, साधक नहीं, महात्मा नहीं। फिर अपने उस अपनापन से इस तरह एकाएक अलग होकर वह कहीं धूनी कैसे रमा सकता है! केवल अविच्छिन्न तथा अनवरत साधना के द्वारा मनुष्य अपने वर्तमान व्यक्तित्व से क्रमशः मुक्त होकर उस भावी व्यक्तित्व में

लीन हो सकता है जिसकी व्यवस्था वह स्वयं निश्चित करता है। किन्तु विनय का पथ मांगता तो किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत हो जाने के कारण था। इसमें विचार कहाँ था, निश्चय कहाँ था? हाँ वह भाग रहा था, और उसका अपनापन कह रहा था "कहाँ, कहाँ, कहाँ भागे जा रहे हो? यहीं तो है रस की वह सरिता जिसके निकट पहुँचने का स्वप्न इतने दिनों से देखते आ रहे हो।" सचमुच क्या यहीं है वह! है भी, तो क्या अधिकार है उसे उसके निकट जाने का? अधिकार! अधिकार की रचना तो मनुष्य स्वयं भी कर लेता है। और भुवन! किसने दिया भुवन को अधिकार! अपने अधिकार की रचना उसने भी तो स्वयं ही की होगी। फिर वह क्यों नहीं कर सकता अपने अधिकार की रचना, कौन सी बाधा है उसके सामने! मैत्री, उसकी मर्यादाएँ! ऐसे स्वर्ण अवसर जीवन में बहुत कम आते हैं, और उनसे लाभ न उठाना मूर्खता है। मैत्री टिकती है, नहीं भी टिकती। और क्या दे देती है मैत्री? नहीं, नहीं, मैत्री की अवहेलना विश्वासघात है। किन्तु अपना स्वार्थ क्या सर्वोपरि नहीं, और उसकी अवहेलना क्या भारी अपराध नहीं! आह! कैसी विकट परिस्थिति है!

औचित्य अनौचित्य का विचार क्या उचित है एक ऐसे मामले में जिसके द्वारा मनुष्य पहुँच सकता है आनन्द और सुख के उच्चतम शिखर पर! फिर कौन ले सकता है औचित्य अनौचित्य का पचड़ा ऐसे अवसर पर! सब कुछ उचित है ऐसे मामले में, एक लोकोक्ति भी तो है इस आशय की। क्या उसे आवश्यकता नहीं उस शिखर पर पहुँचने की? है क्यों नहीं? अवश्य है। क्या वह इनकार कर सकता है इससे कि नितान्त शुष्क है उसका जीवन, और परम आवश्यक है [illegible] वह

उस दिन लक्ष्मी से परिचय प्राप्त कर लेने के बाद विजय ने कई बार उससे भेंट की। और उसने तय कर लिया कि वह एक ऐसी विभूति है, जिसके लिये उच्चतम भावनाओं का बलिदान कर देने में भी उसे आनाकानी नहीं करना चाहिये। लक्ष्मी ने मान लिया कि विजय बड़ा बुद्धिमान और निष्कपट है। लक्ष्मी के पिता से भी उसकी पट गई।

वह जब उनके घर जाता, तो सदैव प्रसन्न दिखाई देता। किन्तु एक दिन वह वेदना-जनित गाम्भीर्य धारण किये हुए था। उसके चेहरे की ओर देखकर लक्ष्मी ने कहा—"आज आप कुछ चिन्तित दिखाई देते हैं? क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"

"फिर भी?"

"एक बात है।"

"क्या?"

"वह बात तुम्हें बतलाना मैं मुनासिब नहीं समझता।"

"कोई बहुत वैसी बात हो, तो रहने दीजिये।"

"बात यह है कि उसका एक ऐसे व्यक्ति से सम्बन्ध है जिसकी हम दोनों इज़्ज़त करते हैं।"

लक्ष्मी निस्तब्ध रही।

"तुम्हारा कौतूहल जाग पड़ा है, और बात भी कुछ वैसी नहीं है। इसलिये अब यह भी उचित नहीं है कि उसे तुमसे छिपाऊँ। उसका सम्बन्ध भुवन से है।"

"भुवन से?"

"हाँ, बात यह है कि भुवन की सगाई एक लड़की से हुई थी। वह सुन्दर, सुशील और पढ़ी-लिखी है। भुवन उसे चाहता भी बहुत था। लेकिन न जाने क्यों, अब वह उससे शादी करना नहीं चाहता

लड़की बना हुआ है। भुवन को अपनी बात समझाना कि अपने वचन से मुकर जाना बुरी बात होती। लेकिन वह एक नहीं सुनता।"

गम्भीर बनी बैठी रही लक्ष्मी।

"मैं मानता हूँ कि मनुष्य का अधिकार है कि वह जिससे चाहे प्रेम करे। किन्तु ऐसा प्रेम, जो टिक न सके, क्या प्रेम कहलाने के योग्य है?"

"हर्गिज नहीं।"

"कितना दुःख है वह लड़की। एक ओर उसकी स्थिर आराधना है, दूसरी ओर भुवन की निष्ठुरता। और मैं जानता हूँ कि मनुष्य गहराई में उतरकर भी छिछला कैसे बना रह सकता है।"

काम हो गया। वह उठ खड़ा हुआ।

"अब चलूँगा। नमस्ते।"

"नमस्ते!" बिना उसकी ओर देखे, धीरे से उत्तर दिया लक्ष्मी ने।

वह चला गया। विचारों में डूबी हुई बैठी रही लक्ष्मी। ऐसा है भुवन! वचन देकर वह उससे मुकर सकता है। उसके प्रेम में स्थिरता नहीं। गहराई में उतरकर भी वह छिछला बना रह सकता है। यह सब क्या सच है? उसके एक घनिष्ठ मित्र ने यह बात बतलाई है, और उसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। ऐसी है दुनिया! सोने की तरह चमकनेवाली हर चीज सोना नहीं होती। ऐसे व्यक्ति से प्रेम करना क्या प्रेम का अपमान नहीं? किन्तु प्रेम क्या अपने वश की बात है? इच्छा का हाथ पकड़कर कब कौन इस कटका-कीर्ण पथ पर चल सका है? वह आँधी है, बवंडर है, भूकम्प है, जादू है। वह आता है, मनुष्य के अन्दर घुसकर बैठ जाता है, और उसे अपने ही रंग में रंग डालता है। उसने उसे निमन्त्रित नहीं किया, किन्तु वह जानती है कि आज वह उसके अन्दर मौजूद है, और उसके

हृदय पर उसी का शासन है। कैसे छूट सकती है वह उसके चंगुल से? कौन लौट सका है इस मंज़िल से? लौटना चाहिये उसे, लेकिन लौटना असम्भव है। ओह, कैसी विडम्बना है यह! वह उसके प्रेम के योग्य नहीं, लेकिन प्रेम तो उसे उससे करना ही पड़ेगा। मिट्टी का लोंदा ही सही, लेकिन जब भक्त ने मान लिया कि यह भगवान् है तो उसके लिये तो वह भगवान् है ही। भगवान् देंगे अवश्य उसे आशीर्वाद उसी के अन्दर से। लेकिन किसी दूसरे से उसे छीन लेना क्या उचित है? नहीं, कदापि नहीं। यह उससे न होगा। सम्भव है कि उस लड़की के प्रति भुवन के मनोभाव में उसीके कारण परिवर्तन हुआ हो। लेकिन भुवन उसके साथ अन्याय करे तो करे, वह तो नहीं कर सकती। गहराई में उतरनेवाला छिछला कैसे बन सकता है? नहीं, नहीं, जीवन अनित्य है, प्रेम नित्य, अनन्त, अक्षय, और सर्वोपरि। क्षुद्रता उसकी महानता के निकट टिकेगी कैसे? नहीं, नहीं।

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल भुवन को लक्ष्मी का यह पत्र मिला —

"प्रिय मिस्टर सिनहा,

अब आप मेरे घर न आया करें। आपसे अब मैं मिलना नहीं चाहती। आप यह समझें कि मुझसे आपका कभी परिचय ही नहीं हुआ था।

लक्ष्मी।"

भुवन माथा पकड़कर बैठ गया। क्यों लिखा लक्ष्मी ने ऐसा पत्र? उससे वह अप्रसन्न है क्या? अवश्य अप्रसन्न है। अप्रसन्न न होती, तो ऐसा पत्र क्यों लिखती? किन्तु क्यों अप्रसन्न है वह? उसने तो अपनी जान में कोई ऐसी बात नहीं की जो उसकी अप्रसन्नता का कारण बन सकता। कारण चाहे जो कुछ हो, यह तो स्पष्ट ही है कि वह उससे कोई सरोकार रखना नहीं चाहती, और चाहती है कि वह

भी उनसे कोई सरोकार न रखे। यह तो उसे करना ही पड़ेगा। अब द्रता से काम ले तो क्या अपराधी वह बन नहीं सकता है? किंतु क्या वह उसे भूल सकता है? अपने जीवन में आकर, आशा के कोमल तारों को झंकृत कर जिसने एक सरल, मधुर, चिरजीवी सङ्गीत की रचना कर दी हो उसे क्या कोई भूल सकता है? असम्भव। बसन्त जब आता है, तो वाटिका का कोना कोना लहलहा उठता है, खिल उठता है, झूम पड़ता है। लेकिन एक दिन जब वह चुपचाप निकल जाता है, तो क्या वह उसे भूल जाती है? भूल सकती है? कदापि नहीं। क्या करना होगा तब?

पल भर में थमकर वह शून्य दृष्टि से पर्दों की ओर ताकने लगा। माँ ने कमरे में प्रवेश किया।

"इस तरह क्यों बैठे हो भुवन? आज पढ़ने नहीं जाओगे क्या?"

"नहीं!"

"क्यों!"

"तबीअत ठीक नहीं है।"

"क्या हुआ है तुम्हें?"

"सिर में दर्द है।"

"तेल मल दूँ?"

"नहीं, रहने दो, माँ! अभी हलका है। मुमकिन है दबाने से बढ़ जाय?"

"एस्प्रीन ही खा लो?"

"खा लूँगा।"

"अच्छा मैं अभी खाना लगाये देती हूँ।"

चली गई। भुवन सिर विचारों में डूब गया।

माँ के बहुत कहने सुनने पर उसने थोड़ा-सा भोजन किया। लेकिन खाना उसे अच्छा नहीं लगा।

दिन भर वह अंधकार से घिरा हुआ पड़ा रहा। संध्या के समय उसे आलोक किरणें दृष्टिगोचर हुईं। वह उठ बैठा। प्रश्न हल हो गया। मन का भयंकर वेदना से वह लड़ेगा, लक्ष्मी से मिलने की कोशिश नहीं करेगा, और उसे भूल जाने की कोशिश करेगा। अकर्मण्य वह नहीं बना रह सकता। अध्ययन में वह पूर्णतया तल्लीन हो जायगा, मनोरंजन के साधनों से पूर्णतया लाभ उठायगा, शान्ति और सन्तोष का सृजन करेगा। आशायें साथ छोड़कर खिसक गईं। जाने दो उन्हें। उनके बिना क्या काम नहीं चल सकता? हृदय क्षत विक्षत हो गया। रहे वह क्षत विक्षत। एक नूतन स्वप्न-जगत् की सृष्टि करेगी उसकी पीड़ा। और वह पंगु जीवन चल सका जड़ता का हाथ पकड़कर, पर निश्चित अन्त की ओर।

× × ×

एक पखवारा बीत गया। लेकिन भुवन भूल नहीं सका लक्ष्मी को। उसकी सूरत हर समय बसी रहती उसकी आँखों में। अपने निश्चय पर वह अनवरत डटा रहा। अध्ययन में वह निरंतर तल्लीन रहता। मन जब न लगता, तो चिल्ला कर पढ़ता। विश्वविद्यालय वह बराबर जाता। मनोरंजन के साधनों से भी काम लेता। किन्तु गहन विषाद उसके मुख-मण्डल पर बराबर अंकित रहता। उसे ऐसा ज्ञात होता, मानो उसका अस्तित्व एक ऐसे कठिन रोग के चंगुल में फँस गया है जो धीरे धीरे उसका क्षय करके ही दम लेगा। अपने शरीर को जड़ मशीन बनाकर उस पर कठोरता से शासन करके क्या कोई अपने को पूर्णतया लीन रख सकता है? शायद नहीं। उस काम के लिये तो एक ऐसे आध्यात्मिक रस की ज़रूरत होगी, जो उसे [illegible] साँचे में ढाल सके। कहाँ था भुवन के पास वह रस?

[illegible] निश्चय से भी वह इधर भेंट नहीं कर [illegible]

इन दिनों [illegible] एक बार [illegible]

लेकिन वह नहीं आया। वह स्वयं एक बार उससे मिलने गया, लेकिन वह नहीं मिला। एक दिन वह एक जगह दिखाई दिया। उसने तुरन्त आवाज़ लगाई। विजय ने मुड़कर उसकी ओर देखा, और तेजी से एक ओर बढ़ गया। सुमन को आश्चर्य हुआ, दुःख भी। किन्तु विजय के इस असाधारण व्यवहार का कारण वह नहीं समझ सका। समझने का प्रयास भी उसने यथेष्ट नहीं किया। अपनी ही चिन्तायें उसे परवाह करने के लिये क्या कम थीं? फिर कभी उससे भेंट करने की कोशिश उसने नहीं की।

लक्ष्मी भी नहीं भूल सकी सुमन को। उसकी याद उसे हर समय सताती रहती। उसके ओठों की हँसी उड़ गई, कपोलों की सुर्खी गायब हो गई। और गहन नैराश्य उसके मन में बैठ गया जमकर। संसार उसे नीरस एवं शुष्क प्रतीत होने लगा। और जान पड़ने लगा उसे कि जीवन एक ऐसा भार है, जिसे बहुत दिनों तक शायद वह सहन न कर सकेगी। मनुष्य का जीवन जब उस अवस्था में पहुँच जाता है जब उसे एक आधार की आवश्यकता होती है, तो उसे खोजे बिना वह रह नहीं सकता। और उसे खोज कर अपना लेने के बाद उसी पर स्थित रहकर वह फूल फल सकता है। उस आधार से सहसा वंचित हो जाने पर जीवन यदि ज्योतिहीन हो मुरझाने लगे, तो यह सर्वथा स्वाभाविक है। लक्ष्मी जानती थी कि उसने एक महान त्याग किया है। किन्तु त्याग के द्वारा प्राप्त किया गया गौरव उस आधार के अभाव की पूर्ति करने में असमर्थ सिद्ध हो रहा था। उस आधार की खोज क्या वह फिर करेगी? कदापि नहीं। नहीं चाहिये उसे ऐसा जीवन जो अपनी ही दृष्टि में उसे गिरा दे।

और विजय? वह भी सुखी न था। जिस मार्ग पर वह चल पड़ा था, उस पर वह चला जा रहा था एक दीवाने की तरह, मतवाले की तरह। किन्तु जब जब उसे होश आ जाता, वह काँप उठता और

सोचने लगता कि आगे कदम बढ़ाना क्या ठीक है? अपना स्वार्थ सर्वोपरि सही, किन्तु दूसरों को कुचलकर, रौंदकर चलते रहने से क्या खुद गिर पड़ने का भय नहीं है। अवश्य है। लेकिन इतनी दूर आकर क्या वह पीछे लौट सकता है? नहीं, हर्गिज़ नहीं। उसे आगे बढ़ना पड़ेगा, बढ़ते ही जाना पड़ेगा। मंज़िल सामने है। अब तो वहाँ पहुँचकर ही वह दम लेगा। मुमकिन है, वह उसके लिये मीठा ज़हर प्रमाणित हो। लेकिन अगर कोई चन्द्रमा तक पहुँचना चाहे और पहुँचने की सामर्थ्य रखता हो, तो क्या मृत्यु के भय से व्यक्ति उसे वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न ही न करना चाहिये? करना चाहिये, अवश्य करना चाहिये।

"ठीक कहा आपने।"

"वह कठिन समय आज मेरे सामने है, और मेरा ख्याल है कि वही शायद तुम्हारे सामने भी है।"

लक्ष्मी निस्तब्ध रही।

"रस का स्रोत जब रुक जाता है, वृक्ष सूख जाते हैं, फूल मुर्झा जाते हैं, वाटिका उजड़ जाती है। किन्तु यदि किसी में उन सब को उस दारुण विपत्ति से रक्षा कर सकने की शक्ति हो, तो क्या उसे उस शक्ति का उपयोग न करना चाहिये?"

"अवश्य करना चाहिये।"

"एक दूसरे की रक्षा कर सकने की शक्ति हम दोनों में विद्यमान है, लक्ष्मी! क्या हमें उससे लाभ न उठाना चाहिये?"

सिहरकर लक्ष्मी फर्श की ओर ताकने लगी।

"मानव जीवन दुर्लभ है, लक्ष्मी! कुछ त्याग, कुछ बलिदान करना पड़े, तो भी मनुष्य का धर्म है कि वह उसकी रक्षा करने में मुख न मोड़े। एक-दूसरे को अपनाकर हम एक-दूसरे की रक्षा कर सकते हैं। अगर तुम मुझे अपना जीवन-सङ्गी बनने के योग्य समझो, तो अपने को धन्य मानूँगा, सौभाग्यशाली समझूँगा?"

लक्ष्मी काँप उठी।

"मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, बेहद प्रेम करता हूँ। तुम्हारे बिना मैं जी न सकूँगा। मेरी रक्षा करो, लक्ष्मी!"

अब निस्तब्ध रहना औचित्य के विरुद्ध था। धीरे धीरे लक्ष्मी ने कहा—"मेरे प्रति आपके जो विचार हैं उनके लिये मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। लेकिन, खेद है, मैं आपकी बात मानने में असमर्थ हूँ।"

"क्यों, लक्ष्मी?"

"मैं आपसे प्रेम नहीं करती, नहीं कर सकती। खेल नहीं है प्रेम। प्रेम तो मनुष्य जीवन में केवल एक बार ही कर सकता है। मेरा हृदय

स्वतन्त्र नहीं है। वह जिसका था, उसीका रहेगा।" वह उठ खड़ी हुई। मन्त्र-मुग्ध दृष्टि से विजय उसकी ओर ताकता रह गया।

"नमस्ते!"

"नमस् ते!"

वह चली गई। किसी तरह उठकर वह भी चला गया, निक्षिप्त-सा, खोया हुआ-सा, लुटा हुआ-सा, पिटा हुआ-सा! खुल गईं उसकी आँखें। माना एक स्वप्न था जो टूट गया, एक खुमार था जो उतर गया। ज्ञात होने लगा उसे कि वह क्या है और क्या है। तो ऐसा है लक्ष्मी के प्रेम का रूप! कितना महान् है वह! आग में पड़कर वह जल नहीं सकता, अवरोध से विचलित नहीं हो सकता, तूफान उस पर असर नहीं कर सकता। चट्टान की तरह सुदृढ़ है वह, सागर की तरह अथाह! और उसका अपना प्रेम! कितना तुच्छ, कितना निकृष्ट है वह! स्वार्थ के सहारे वह खड़ा है, कपट उसका अस्त्र है, त्याग और बलिदान उसने जाना नहीं। उसीका उसने दुरुपयोग किया, जिसे प्यार करने का दम भरा, मैत्री को रौंदकर वह आगे बढ़ा। ऐसा अपवित्र अर्घ्य लेकर वह गया था उस पावन प्रतिमा के सामने! धिक्कार, सैकड़ों-हजारों बार धिक्कार!

होस्टेल पहुँचकर, अपने कमरे में आकर, दरवाज़ा बन्द करके विजय चारपाई पर अस्त-व्यस्त लेट गया। अब क्या रहा उसके पास? छिन्न-भिन्न हो गया आशाओं का सुनहरा जाल। आहत होकर ढेर हो गईं मधुर लालसायें। उड़ गये पंख फैलाकर सुन्दर सपने। बाकी रह गया है केवल यह सूखा-सूखा-सा, रूखा मटका अपवित्र जीवन। गुमराह नहीं था वह पहले, निश्छल भी था, बिलकुल सरल है वह। किन्तु उद्दाम तृष्णा के वशीभूत होकर, कण्टक पथ पर दौड़कर गड्ढे में गिर, ऐसी कालिमा में सन गया है वह जिसका धुल सकना असम्भव है। मस्तिष्क पर कालिमा धरकर ऐसी ठोकर खाई है इसने जिसके आघात से शायद

वह बच न सकेगा। "दाह में डूबकर भी वह विद्रूप बना था! असह्य था उसका विद्रूप-गान। "कभी तुम भी किसी पर मरते थे?" शब्द विद्ध हो गये मस्तक में चढ़ी हुई सुरा की तरह ताप। वह ऐसा लगा, ऐसा लिखा कि अपना सा ही ले डूबा। सुरा! सीधा-सादा, भोला भाला सुमन! जड़ काटने की चेष्टा की उसने स्वयं अपनी ही, जिस पर खड़ा था। कैसा भयंकर विश्वासघात था वह! खेल नहीं है प्रेम! कितना सत्य है लक्ष्मी का वह कथन! निस्सन्देह खेल नहीं है प्रेम! इस धार की धार पर चल सकने की सामर्थ्य रखनेवाला व्यक्ति ही उसकी अग्नि-परीक्षा में खरा साबित हो सकता है। त्याग करना, बलिदान करना जिसने सीखा नहीं वह कैसे उत्तीर्ण हो सकता है उसमें!

घेरने लगा उसे भयावह अन्धकार। घुटने लगा उसका दम। बड़ी देर तक पड़ा रहा वह मूर्छित-सा। सहसा दृष्टिगोचर हुई आलोक की एक रेखा। जान आई उसकी जान में। उठकर आ बैठा वह मेज पर, और लिखने लगा एक पत्र।

× × ×

उसी दिन, रात के समय सुमन को लक्ष्मी का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—"कृपया तुरन्त आने का कष्ट कीजिये। एक जरूरी काम है—लक्ष्मी।" हर्ष से उसका हृदय भर गया। आशायें फिर जाग पड़ीं। क्या बुलाया है उसने! जाना चाहिये? जरूर जाना चाहिये। किन्तु यदि इसका परिणाम कुछ न हुआ तो? फिर भी उसे जाना चाहिये। तुरन्त तैयार होकर वह चल पड़ा।

लक्ष्मी ड्राइंग-रूम में उसका इन्तज़ार कर रही थी। उसे देखते ही वह उठ खड़ी हुई।

"नमस्ते!" लक्ष्मी ने मुस्कराकर कहा।

"नमस्ते!" सुमन ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

"बैठिये!"

वह दूसरे सोफे पर बैठने लगा।

"इसी पर बैठिये।"

वह बैठ गया उसी सोफे पर। लक्ष्मी भी बैठ गई। दोनों चुप थे। निस्तब्धता खलने लगी भुवन को। लेकिन वह क्या कहे, तब लक्ष्मी ने उसके हाथ में एक पत्र दे दिया।

"क्या है यह ?"

"देखिये !"

लिफाफे में पत्र निकालकर वह चुपचाप पढ़ने लगा—

'लक्ष्मी,

भुवन के सम्बन्ध में मैंने तुमसे जो कुछ कहा था वह सब झूठ था। किसी दूसरी लड़की को वह नहीं प्यार करता। केवल तुम्हीसे उसे प्रेम है।

वह सब क्यों कहा था मैंने तुमसे ? इसका कारण एक था, और वह यह कि मैं तुम्हें प्यार करने लगा था। मैं मानता हूँ, यह मेरी धृष्टता थी उसी धृष्टता ने मुझे गढ़े में ढकेल दिया ? मैं मदहोश था। तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं। सचमुच 'खेल नहीं है प्रेम।' तुम कितनी महान् हो, और मैं कितना क्षुद्र हूँ। तुम्हीं को मैंने दुःख पहुँचाया जिसे प्यार करने का दम भरा। भुवन को मैंने धोखा दिया जो मेरा मित्र था और मुझपर विश्वास करता था। कैसा पतित हूँ !

किन्तु विश्वास करो लक्ष्मी, अब मैं तुम दोनों के रास्ते का काँटा नहीं बना रहूँगा अपनी छाया भी तुम्हारे मार्ग में न पड़ने दूँगा। अब तो मेरी केवल यही कामना और प्रार्थना है कि तुम दोनों एक होकर फूलो फलो।

कोई आशा अब मेरे लिये नहीं रही। मेरा यह अपवित्र जीवन अब मेरे योग्य भी नहीं रहा। सोचता हूँ कि जो अग्नि मेरे अन्दर जल

बेवफ़ा

पानी मूसलधार बरस रहा है। सिर पर पंखा चक्कर काट रहा है। फिर भी शरीर में पसीना आ रहा है। रामेश्वर परेशान है।

साढ़े तीन बज चुके हैं। चार बजे दफ्तर बन्द हो जायगा। लेकिन काम का यह हाल है कि अभी तक पूरा नहीं हो सका। पहले कभी ऐसी हालत नहीं हुई। नित्य दफ्तर बन्द होने के समय तक, वह अपना सारा काम समाप्त कर लेता था। लेकिन आज वह सब भूल गया है। लाख कोशिशें करने पर भी, आज का काम अधूरा ही रह गया।

बात यह थी कि उसके अन्दर एक भयानक अग्नि आज सहसा प्रज्वलित हो उठी थी और कम होने के बजाय वह निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी। गहरी अशान्ति उसके मन में घर कर चुकी थी और रह रहकर भयानक वेग से उठकर वह उसे चारों ओर से घेर लेती थी। इस अशान्ति का प्रवर्तक था एक विचार, जो अन्य विचारों को ढकेल कर ऊपर आ जाता था। बड़ा कष्टदायक था यह विचार।

रत्ती—बेवफा! वह, जिसे उसने सम्पूर्ण हृदय से प्यार किया जिसे अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, जिसके पीछे घर-बार त्याग दिया, जिसके कारण समाज द्वारा लांछित और अपमानित भी हुआ—वह बेवफा! हृदय विश्वास नहीं कर पाता था। लेकिन सन्देह साधारण नहीं था। आँखों देखा प्रमाण था।

बड़ा भावुक है रामेश्वर, लेकिन उसकी भावुकता अन्धी नहीं है। वह शेर की तरह क्रोधित हो सकता है, पत्ते की भाँति आन्दोलित हो

सकता है, लेकिन अकारण नहीं, नितान्त कल्पना जनित भावना की प्रेरणा से नहीं। चरम सीमा तक पहुँची हुई आज की यह भावना भी कल्पना जनित नहीं है। इसका भी एक सुदृढ़ आधार है। वह दृश्य—दिल में नश्तर की तरह चुभनेवाला वह दृश्य! सवेरे ही की तो बात है!

उसके घर की बैठक। गोपाल एक आरामकुरसी पर पैर फैलाये बैठा हुआ है। रजनी हलुए की तश्तरी हाथ में लिये उसके सामने खड़ी हुई है। मुस्कान दोनों के चेहरों पर व्यक्त है। दोनों की आँखें मिली हुई हैं और एक दूसरे से जाने क्या-क्या कह रही हैं। वह अन्दर झाँकता है, देखता है और उलटे-पाँव वापस जाता है।

जो बात वह रजनी से कहना चाहता था, वह मस्तिष्क से उड़ गई। गहरी चोट लगी है उसके दिल पर। जाने कैसा लग रहा है। पैर ठीक तरह नहीं पड़ रहे हैं। विचारों की विविध धारायें एक दूसरे से टकरा रही हैं। सिर चकरा रहा है। किस तरह सदन पार करके वह दालान में पहुँचा और किस तरह सीढ़ियाँ पर चढ़कर वह ऊपर पहुँचा, यह सब वह नहीं जानता।

वह पलंग पर पड़ा है। वही है यह शयनागार। शयनागार की सारी चीजें भी ये हैं। लेकिन कोई चीज़ पहले जैसी नहीं लग रही है। जैसे सारी चीजें एकाएक परिवर्तित होकर अपरिचित सी लग रही हैं। वह स्वयं जैसे एकाएक परिवर्तित होकर अपने को अपरिचित लग रहा है।

उन दोनों की आँखों का वह भाव उसकी आँखों के सामने चक्कर काट रहा है। और वह उसका वास्तविक अर्थ समझने की कोशिश कर रहा है। वह मंद बुद्धि नहीं है और अर्थ भी दुर्बोध नहीं है। 'खूब बेवकूफ बना तू, रामेश्वर!'—कोई मन में कह उठता है। बेशक बड़ा, बेवकूफ बना वह। उस कथन से वह असहमति कैसे प्रकट करता! असहमति के लिये कोई आधार खोजने से भी नहीं मिला।

आखिर कौन है रजनी का ? दो दिन पहले घर आया उसका घर आया और रजनी ने उसे बताया कि वह उसकी मौसी की ननँद के जेठानी का लड़का है, तो रामेश्वर ने मान लिया कि यह दूर के रिश्ते में रजनी का भाई है। उसने सहर्ष उसका स्वागत किया और उसकी जितनी खातिर बन पड़ी उतनी की। उसने उससे घुलकर बातें की, हँसी दिल्लगी भी की। इस तरह नातेदार का समुचित स्वागत सत्कार करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा। यह सोचकर उसे आत्मिक सन्तोष हुआ कि आखिर एक ऐसा नातेदार मिल गया, जिसे वे अपना सँग और जो उन्हें अपना लगा। किन्तु आज कितना निराधार सिद्ध हुआ यह सन्तोष !

कौन थी रजनी ? जिस मुहल्ले में रामेश्वर का पैतृक निवास स्थान था, उसमें दुलारी नाम की एक स्त्री रहती थी, जो निम्न वर्ग की थी और जिसके चरित्र के सम्बन्ध में लोगों को सन्देह था। इसी दुलारी के घर रामेश्वर ने रजनी को पहले-पहल देखा था। वह विधुर था, और उसके मित्र और घरवाले पुनर्विवाह के लिये इसरार कर रहे थे। ऊपर से तो वह इनकार कर रहा था, लेकिन अपने मन में यह अनुभव करता था कि स्त्री के बिना उसका काम नहीं चल सकेगा। रजनी को देखकर वह उसके प्रति आकृष्ट हो उठा और उसे लगा कि उसकी उसे सख्त जरूरत है। दुलारी के घर वह कभी नहीं गया था और अब भी उसके यहाँ जाना, उसे उचित प्रतीत नहीं हो रहा था। फिर भी उसके घर जाकर उसने रजनी से भेंट की। तीसरी भेंट के समय रजनी ने उसे अपनी करुण कहानी कह सुनाई। रजनी ने कहा— "मैं विधवा हूँ और एक प्रतिष्ठित कुल की हूँ। बरेली में मेरा मायका है और वहीं ननिहाल भी। तीर्थ-यात्रा के निमित्त मैं अपनी नानी के साथ यहाँ आई थी। यहाँ पर जिस पंडे के घर हम दोनों ठहरी थीं, वह बड़ा दुष्ट निकला। एक रात को जब मैं अपनी नानी के पास

सो रही थी, वह मुझे उठा ले गया और उसने मुझे अपने घर की एक कोठरी में बन्द कर दिया। सवेरे जब नानी की आँख खुली, तो मुझे अनुपस्थित पाकर वह घबरा उठी और मुझे खोजने लगीं। पूछ-ताछ करने पर पंडे ने कहा कि वह मेरे बारे में कुछ नहीं जानता। कई दिना तक इधर उधर मेरी खोज करने के बाद वह घर लौट गई। शायद पंडे की इस बात पर उन्हें विश्वास हो गया—'सम्भव है, वह किसी के साथ भाग गई हो।'

"पंडे ने मेरा सब कुछ छीन लिया और कुछ दिनों के बाद वह मुझे तरह-तरह की यातनाएँ देने लगा। अभी तक उससे अपनी रक्षा कर सकने का कोई उपाय मेरे पास नहीं था। लेकिन एक दिन मुझे बच निकलने का अवसर मिल गया। उस दिन उसने मुझे कोठरी में बन्द नहीं किया था। दिन भर वह घर नहीं आया, रात को भी नहीं आया। आधी रात के समय जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, और घर के अन्य लोग गहरी निद्रा में निमग्न हो गये, तो मैं चुपके से अपनी कोठरी से बाहर निकली और दबे-पाँव सदर दरवाज़े की ओर बढ़ी। धीरे से सदर दरवाज़ा खोलकर मैंने झाँका। बाहर चबूतरे पर पड़ी हुई चारपाइयों पर कई लठैत लेटे हुये थे। वे सब खुर्राटें भर रहे थे। मैं धीरे धीरे बाहर निकली और गली में पहुँचकर तेज़ी से एक ओर भागी। भय और विकलता से मैं काँप रही थी, और मेरा हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। उस गली से निकल कर मैं एक सड़क पर पहुँची। फिर उस सड़क से दूसरी सड़क पर, दूसरी से तीसरी पर और तीसरी से चौथी पर। न जाने कितनी सड़कें पार कर चुकने के बाद अन्त में, मैं एक ऐसे स्थान पर पहुँची, जो पूर्णतः निर्जन प्रतीत हो रहा था, जहाँ आस-पास कोई घर दिखाई नहीं दे रहा था, वहीं एक पेड़ के नीचे मैंने रात काट दी। सवेरा होते ही मैं फिर चल पड़ी। चलते चलते मैं इस मुहल्ले में पहुँची और यहाँ

दुलारी से मेरी भेंट हुई। इस भली स्त्री ने बड़ी सहानुभूति से मेरा हाल सुना और बड़े प्रेम से मुझे अपने घर में आश्रय दिया। इसका एहसान मैं जीवन भर नहीं भूलूँगी। मुझ जैसी अभागिनी संसार भर में कहीं न होगी।"

रामशंकर का दिल भर आया। कई क्षणों तक वह निस्तब्ध रहा। फिर दीर्घ निःश्वास छोड़कर उसने पूछा—"अब क्या करने का विचार है?"

"कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।" अवरुद्ध कण्ठ से रजनी ने उत्तर दिया।

"नानी के पास वापस जाओगी?"

"वहाँ जाकर क्या करूँगी? मुझे देखकर उन्हें लज्जा आयेगी, और अगर वह मुझे अपने यहाँ फिर रख लेने को राजी भी हो जायँगी, तो उनकी बड़ी बदनामी होगी। जहाँ तक मैं समझती हूँ, घर लौटकर उन्होंने लोगों से यही कहा होगा कि यात्रा में अकस्मात् मेरा देहान्त हो गया। ऐसी दशा में जब मैं वापस जाऊँगी, तो वह क्या सफाई देंगी? कोई सफाई दी भी जायगी, तो लोग उसे स्वीकार नहीं करेंगे। नहीं, अब मैं उन्हें परेशानी में डालना नहीं चाहती। अपना यह काला मुख उन्हें फिर दिखाना नहीं चाहती।"

"तब?"

रजनी खामोश रही।

"यहाँ रहोगी तो कुछ दिनों के बाद तुम्हारी वही दशा होगी, जो उस दुष्ट पंडे के घर में हुई थी।"

वह सिहर उठी, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

"मैं एक सरकारी दफ्तर में नौकर हूँ और विधुर हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि मुझे तुम्हारी जरूरत है। अगर तुम्हें स्वीकार हो, तो मैं तुम्हारी देख-रेख का भार अपने ऊपर लेने को तैयार हूँ।"

रजनी फिर निस्तब्ध रही।

"अपने हित की बात तुम मुझसे अधिक समझ सकती हो। मैं यह नहीं चाहता कि तुम इसी समय उत्तर दे दो। सोच समझ लो।"

"सोचकर उत्तर दूँगी।"

"कब ?"

"जल्द ही।"

"कल ?"

"कल ही सही।"

और दूसरे दिन रजनी ने स्वीकृति दे दी। तब रामेश्वर उसे अपने घर लिवा लाया। घर में बड़ी खलबली मची। घरवालों ने रजनी को अपना लेना, किसी तरह स्वीकार नहीं किया। विवश होकर एक दूसरा घर लेकर रजनी के साथ रहने लगा। चारों ओर उसकी बदनामी होने लगी। कुछ दुष्टों के बहकावे में आकर दुलारी ने रामेश्वर के विरुद्ध मुकद्दमा दायर कर दिया। उसके ऊपर उसने यह अभियोग लगाया कि वह उसकी नातिन को बहकाकर भगा ले गया। दोनों ओर से शहादतें गुजरीं। रजनी ने अपने बयान में कहा—"मैं बालिग हूँ। दुलारी मेरी कोई रिश्तेदार नहीं है। घटनावश निराश्रित हो जाने के कारण, मैंने उसका आश्रय ग्रहण किया था। उसके आश्रय की अब मुझे आवश्यकता नहीं है। अब मैंने रामेश्वरकुमार का आश्रय ग्रहण कर लिया है। उनके पास मैं अपनी इच्छा से गई थी और उन्हीं के पास फिर जाना चाहती हूँ। उनके अतिरिक्त मेरे ऊपर किसी का कोई अधिकार नहीं है।"

डाक्टरी परीक्षा से यह सिद्ध हो गया कि वह बालिग है। तब अदालत ने मुकदमा खारिज कर दिया। रजनी रामेश्वर के पास वापस आ गई। बदनामी और आये दिन के अपमान से तंग आकर उसने अपनी बदली इस नगर में करा ली। [illegible]

अपनी नानी को एक पत्र लिखा, लेकिन उसका कोई उत्तर उसे नहीं मिला।

इतना पर उसने रजनी के लिये किया, फिर भी वह पूरी तरह उसकी नहीं हो सकी। अगर वह पूर्णतया उसकी हो गई होती, तो आज यह दृश्य उसे क्यों देखना पड़ता? नारी! शायद कोई स्थान नहीं है नारी के त्याग का। पुरुष का कोई बलिदान शायद उसे संतुष्ट नहीं कर सकता। सम्भव है, उसकी इस धारणा में अतिशयोक्ति हो, किन्तु अपने अनुभव की अवहेलना वह कैसे कर सकता है? कम से कम रजनी के सम्बन्ध में तो उसकी यह धारणा सत्य ही है।

उसने इतना सब क्यों किया रजनी के लिए? इसीलिये कि उससे मिलकर उसे अनुभव हुआ कि यही वह स्त्री है, जिसकी उसे इतने दिनों से तलाश थी, जो उसकी जीवन-संगिनी बनने के सर्वथा योग्य है। और उससे सब-कुछ पा चुकने के बाद, रजनी ने सिद्ध कर दिया कि यह उसका भारी भ्रम था।

रजनी में रूप था, यौवन था। गृह-कार्य में वह दक्ष नहीं थी। सुशिक्षिता भी वह नहीं थी। साधारण भाषा ज्ञान तक उसकी शिक्षा सीमित थी। पर जैसी भी, वैसी ही उसके लिये बहुत थी। लेकिन वह जैसा था, वैसा उसके लिये काफी नहीं था। शायद वह एक की होकर रहने के योग्य ही नहीं थी।

रजनी—बेवफा! हृदय अभी तक विश्वास नहीं कर पा रहा है। सन्देह साधारण नहीं है। आँखों देखा प्रमाण है। दोनों की आँखों का यह भाव—दिल में नश्तर की तरह चुभनेवाला यह भाव!

रजनी का पता गोपाल को मालूम कैसे हुआ? सम्भव है, रजनी की नानी ने बतलाया हो सम्भव है स्वयं रजनी ने उसे पत्र लिखा हो। इसमें सन्देह नहीं कि पहले के लगाव के कारण वह यहाँ आया है। बड़े प्रसन्न हैं दोनों, जैसे कोई विघ्न-बाधा उनके सामने न हो।

लेकिन वे भूल रहे हैं कि एक तीसरा व्यक्ति भी है, जो अवसर आने पर कुछ कहेगा और साधारण नहीं होगा वह 'कुछ!'

विचित्र खेल है यह मानव जीवन! आदमी की परख करने ही में जीवन का अधिकांश भाग व्यतीत हो जाता है, और जब परख हो चुकती है, तो लगता है कि वह परख निरर्थक ही थी। "खूब बेवकूफ बना तू, रामेश्वर!" बराबर यह बेवकूफ बना। लेकिन कोई हमेशा बेवकूफ नहीं बना रह सकता। और मूर्ख जब बुद्धिमान बन जाता है, तो फिर उसे कोई धोखा नहीं दे सकता।

चार बज गये। अन्य कर्मचारी दफ़्तर से विदा होने लगे। उसने भी फाइलें समेटकर रख दीं। अगर वह आधी रात तक दफ़्तर में बैठा रहे, तो भी शायद आज का काम समाप्त न हो सकेगा। टोप लगा कर वह बाहर निकला और अपनी साइकिल लेकर चलने लगा।

"अरे ठहरो, रामेश्वर! मैं भी चलता हूँ।"

लेकिन रामेश्वर रुका नहीं। साइकिल पर सवार होकर वह तेज़ी से चल पड़ा। बड़ा बक्की है राजकिशोर! जब बात करने लगता है, तो दिमाग़ चाट डालता है। और उसे हमेशा अपना ही रोना रहता है। कोई दूसरा विषय सूझता नहीं, और किसी दूसरे विषय में वह दिलचस्पी भी नहीं ले सकता। यहाँ इस समय अपना ही रोना क्या कम है!

हाँ, तो रजनी बेवफ़ा निकली। हृदय अब भी विश्वास नहीं करता। लगता है कि जिस नारी को उसने अपना सब कुछ दे डाला, वह ऐसा आघात कैसे दे सकती है! आत्म-सम्मान को ठेस लगती है। लेकिन हृदय के विश्वास न करने से, आश्चर्य करने से, आत्म-सम्मान को ठेस लगने से, सत्य-असत्य तो हो नहीं सकता। लेकिन सत्य पर परदा डालने से किसी का कल्याण नहीं होता, उसे स्वीकार कर लेने ही में भलाई रहती है। सत्य असुन्दर हो सकता है, कड़ुआ भी हो

सकता है, लेकिन उसकी ओर से मुख फेरकर कोई उसके प्रभाव से बच नहीं सकता। किन्तु वह क्या वास्तव में सत्य है? निस्सन्देह वह सन्देह-मात्र है। किन्तु वह निष्प्रमाण नहीं है और प्रमाण साधारण नहीं है। फिर भी क्या एक जोरदार प्रमाण, अभियोग सिद्ध करने के लिये यथेष्ट है। मानव-चरित्र जटिलताओं का एक समूह है। किसी कृत्य का अर्थ सदैव वह नहीं होता, जो ऊपर से दिखाई देता है। सम्भव है, स्वयं उससे भूल हुई हो, उसने ग़लत अर्थ लगाया हो। ईर्ष्या प्रीति के पीछे-पीछे लगा रहती है। और ईर्ष्या निराधार कल्पनायें भी कर सकती है, चित्र का अतिरंजित भी कर सकती है। रजनी की वकालत वह सुनना नहीं चाहता? लेकिन एकतरफ़ा डिगरी देना न्याय का गला घोंटना भी तो कहलाता है? नहीं, नहीं, उसे अधिकार के दुरुपयोग से बचना ही होगा। कम से कम अन्य प्रमाणों की प्रतीक्षा तो उसे करनी होगी।

× × ×

घर पहुँचने से पहले रामेश्वर ने निश्चय किया था कि वह अभी अन्य प्रमाणों की प्रतीक्षा करेगा, अपने मनोभावों को प्रकट न होने देगा और पूर्ववत् व्यवहार ही करेगा। लेकिन घर पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि यह सब कर सकना उसके लिये आसान नहीं है।

मकान के सामने साइकिल से उतरकर जब उसने दरवाज़ा खटखटाया, तो रजनी ने सदैव की भाँति मुस्कराते हुये दरवाज़ा खोला। रजनी की मुस्कान उसकी थकावट हर लेती थी और वह भी मुस्करा पड़ता था। लेकिन आज वह मुस्करा नहीं सका। रजनी उस समय नख से शिख तक सजी हुई थी। उसे उस रूप में देखकर, अत्यधिक प्रसन्नता का भाव उसके मन में उग नहीं सका। रजनी शृंगार पर जान देती थी। सजना-सँवरना उसके लिये कोई असाधारण बात नहीं थी। फिर भी रामेश्वर को उसमें असाधारणता की बू आई और उसके

द्वारा भी उसे अपने सन्देह की पुष्टि होती दिखाई दी। साइकिल उठा कर उसने चुपचाप घर में प्रवेश किया। सहन पार किया, साइकिल दालान में टेक दी और तेज़ी से ऊपर चला गया। रजनी चकित दृष्टि से ताकती रह गई।

ऊपर शयनागार में पहुँचकर, कपड़े उतारकर, पैर फैलाकर लेट गया। तूफ़ान आने के पहले वायुमण्डल की जैसी दशा हो जाती है, ठीक वैसी ही दशा उस समय उसके मन की हो रही थी। तड़पते हुये, उबलते हुये मनोभाव फूट पड़ने, बरस पड़ने को मचल रहे थे। मन के ऊपरी आवरण की बाधक शक्ति क्षीण होती जा रही थी। मानव-मुख दर्पण है जिसमें मनोभावों की छायायें आती-जाती रहती हैं। उत्तेजना की चरम सीमा तक पहुँचे हुये मनोभावों को दबा सकना तो उसके लिये असम्भव था ही, उन पर परदा डाल सकने की सामर्थ्य भी वह अपने में नहीं पा रहा था।

सीढ़ियों से रजनी के पैरों की आवाज़ आने लगी। तेज़ी से उठ कर वह समाचार-पत्र उठा लाया और पलग पर फिर लेटकर उसके पन्ने उलटने लगा। नाश्ते की तश्तरी हाथ में लिए हुए रजनी अन्दर आई। रामेश्वर पत्र में दृष्टि गड़ाये बैठा रहा।

"क्या बात है?" चिन्तित स्वर में रजनी ने पूछा।

मनोभाव प्रकट होने को तड़प उठे, लेकिन रामेश्वर निस्तब्ध रहा।

"तबीअत कैसी है?"

"ठीक तो है।"

"तब?"

वह उठकर छत पर चला गया। तश्तरी तिपाई पर रखकर रजनी पान लगाने लगी।

हाथ-मुँह धोकर वह वापस आया और पलग पर बैठकर नाश्ता करने लगा। रजनी चुपचाप पान लगाती रही। वह जानता था कि

जब वह बात करना नहीं चाहता, तो उससे बात करने की कोशिश का नतीजा अच्छा नहीं होगा। पानी और पान देकर वह चली गई। उस समय गहन चिन्ता व्यक्त थी उसके चेहरे पर। उसके चले जाने से रामेश्वर को किंचित संतोष हुआ। रजनी से बात करना, इस समय खतरे से खाली नहीं था। ज़रा देर बाद चप्पल पहिनकर और छड़ी लेकर वह घूमने चला गया।

नौ बजे के करीब जब वह घूमकर वापस आया, तो वह कुछ शान्त हो गया था। यह बात नहीं कि उसकी समस्या हल हो गई हो। नहीं, वह ज्यों की त्यों बनी हुई थी। और उसके हृदय में जो अग्नि धधक उठी थी वह भी पहले ही की तरह प्रज्वलित था। बात केवल इतनी थी कि जो पार्ट खेलने का वह निश्चय कर चुका था, उसे खेल सकने की स्थिति में वह आ गया था।

घर में प्रवेश करके वह बैठक के सामने रुक गया। अखबार सम्हाले हुए गोपाल एक आरामकुरसी पर आसीन था। अखबार से दृष्टि उठाकर उसने रामेश्वर की ओर देखा।

"आ गये, भाई साहब!" दाँत निकालकर उसने कहा।

"हाँ!"

"आज बड़ी देर कर दी!"

"कुछ देर तो बेशक हो गई। खाना खा चुके?"

"जी हाँ, खा चुका। मैं तो आपका इन्तज़ार करना चाहता था, लेकिन बहिन ने ज़िद की, इसलिये खाना पड़ा।"

"बहुत अच्छा किया।"

वह अन्दर चला गया। दालान में पड़ी हुई चारपाई पर रजनी लेटी हुई थी। उसे देखकर वह उठ बैठी।

"कहाँ गये थे?"

"घूमने।"

"बड़ी देर कर दी ?"

"हाँ, कुछ देर हो गई। रास्ते में एक महाशय मिल गये। उनके साथ बहुत दूर तक चला गया, इसलिये देर हुई।"

"खाना बिलकुल ठण्डा हो गया होगा।"

"कोई हर्ज नहीं। ठण्डा खाना मुझे बुरा नहीं लगता।"

"ठीक करूँ खाना ?"

"करो। आता हूँ अभी।"

ऊपर जाकर, छड़ी एक कोने में रखकर, कमीज और चप्पल उतारकर, हाथ-मुँह धोकर, वह नीचे चला गया। लग रहा था उसे कि अभी तक उसका पार्ट निर्दोष रहा और शायद आगे भी निर्दोष बना रह सकेगा।

दस बज चुके थे। रजनी उत्साहपूर्वक रामेश्वर के पैर दाब रही थी। कई बार वह मना कर चुका था, लेकिन रजनी किसी तरह छोड़ती ही नहीं थी उसके पैर। प्राय नित्य वह उसके पैर दाबती थी और काफी देर तक दाबती थी। लेकिन रामेश्वर को इस समय लग रहा था कि सेवा भाव के उस प्रदर्शन से भी उसके सन्देह की पुष्टि हो रही थी।

"रजनी !"

"जी !"

"मेरा एक मित्र बड़ी परेशानी में पड़ गया है।"

"किस परेशानी में ?"

"उसकी स्त्री न जाने कहाँ चली गई। बेचारे ने सारे शहर में खोज की, मित्रों और रिश्तेदारों को तार दे देकर पूछ ताछ की, लेकिन कुछ पता नहीं लगा। मेरा खयाल है कि वह अपने किसी प्रेमी के साथ भाग गई। लेकिन मेरा मित्र ऐसा नहीं समझता। तुम्हारी क्या राय है ?" रजनी के हाथ किंचित् काँप गये।

"तुम्हारे मित्र का क्या खयाल है ?"

उसका खयाल है कि उसने आत्म हत्या कर ली।"

"आत्म हत्या आसान काम नहीं होता।"

"यह तो ठीक है, लेकिन रघुवीर का कहना है कि उसकी स्त्री बहुत भावुक थी। अकसर वह बेमतलब उत्तेजित हो उठती थी और निराधार बातें सोच-सोचकर कई-कई दिन तक अनमनी बनी रहती थी। झगड़े की कोई बात तो इधर नहीं हुई थी, लेकिन सम्भव है, कोई काल्पनिक बात लेकर वह अन्दर ही अन्दर बेचैन बनी रही हो।"

"मैं समझती हूँ कि तुम्हारे मित्र का खयाल ठीक है।"

"क्यों ?"

"अपनी स्त्री की बात वह हम लोगों से ज्यादा समझ सकते हैं। इसके अलावा यह भी है कि अगर उसका कोई प्रेमी होता, तो उसकी बात तुम्हारे मित्र को जरूर मालूम हो गई होती। ऐसी बात छिपी नहीं रहती।"

"क्या अत्यधिक सावधानी रखने पर भी ऐसी बात छिपी नहीं रह सकती ?"

रजनी के हाथ फिर कुछ काँप गये।

"यह मैं नहीं कह सकती।"

रामेश्वर ने आगे कोई प्रश्न नहीं किया। उसका अभिप्राय पूरा हो चुका था। रजनी के उत्तर निस्सन्देह सन्तुष्ट थे और उनमें उसे वह नहीं मिला, जिसकी वह खोज कर रहा था। लेकिन उसके हाथ दो बार काँपे थे। उसके सन्देह की पुष्टि के लिये यह यथेष्ट था।

अर्द्धरात्रि बीत चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। हवा बन्द थी और वायुमण्डल में उमस भरी हुई थी। कमरे में धुँधला प्रकाश फैला हुआ था। रामेश्वर अपने बिस्तर पर आँखें बन्द किये पड़ा था, लेकिन लाख कोशिशें करने पर भी सो सकना उसके लिये

असम्मत हो रहा था। पसीने से उसका सारा शरीर तर हो गया था, तबीयत बेहद बेचैन थी। फिर भी वह निश्चल पड़ा था। रजनी भी अपने बिस्तर पर आँखें बन्द किये पड़ी थी, लेकिन नींद उसकी आँखों में भी न थी। वह भी उत्तेजित थी, बेचैन थी। उस घर में एक अन्य व्यक्ति भी था। क्या हालत थी उसकी ?

खट्-खट्-खट्! एकाएक नीचे से आवाज़ आई। वह आवाज़ काफ़ी हलकी थी, लेकिन सन्नाटे के कारण बिलकुल साफ़ सुनाई दी। खट्-खट्-खट्। दो क्षण के बाद फिर वैसी ही आवाज़ आई। इस तरह कई बार वैसी ही आवाज़ आई। रामेश्वर का कौतूहल जाग्रत हो उठा और उसके मस्तिष्क में प्रश्नों की बाढ़ आ गई। लेकिन वह चुपचाप उसी तरह पड़ा रहा। रजनी का शरीर हिला और उसने सिर घुमाकर रामेश्वर की ओर देखा। कई क्षणों तक वह उसे ध्यानपूर्वक देखती रही। फिर वह धीरे से, बहुत धीरे से उठी और चारपाई छोड़कर खड़ी हो गई। क्षण भर फिर रामेश्वर की ओर ध्यानपूर्वक देखकर, वह दबे पाँव धीरे-धीरे दरवाज़े की ओर बढ़ी। पूरी सावधानी और अत्यधिक निस्तब्धता से दरवाज़ा खोलकर वह कमरे से बाहर निकली और दबे-पाँव नीचे उतरने लगी। रामेश्वर की आँखें बन्द-सी दिख रही थीं, लेकिन यह सब वह साफ़-साफ़ देख रहा था। कई क्षणों तक वह उसी तरह चुपचाप पड़ा रहा। फिर धीरे से चारपाई छोड़कर वह भी उठ खड़ा हुआ और दबे पाँव दरवाज़े की ओर बढ़ा।

दरवाज़े पर रुककर वह सावधानी से नीचे की ओर झाँकने लगा। सीढ़ियों पर कोई नहीं था। वह सावधानी से कमरे से बाहर निकला और बिल्ली की तरह दबे पाँव नीचे उतरने लगा। पाँचवीं सीढ़ी पर पहुँचकर वह ठिठक गया। चाँदनी का एक स्तम्भ दालान के फ़र्श पर पड़ा हुआ था और दालान में धुँधला प्रकाश छाया हुआ था। उस धुँधले प्रकाश में उसे जो कुछ देखने को मिला, उससे वह चकित नहीं

हुआ। दालान के मध्य में बिछी हुई चारपाई के उस ओर दो छाया-मूर्तियाँ निपट खड़ी थीं।

"अच्छा, यह गुल खिल रहा है!" तख्त से उतरते हुए रामेश्वर ने कहा।

छाया-मूर्तियाँ अलग हो गईं। रामेश्वर झपटा। गोपाल के ऊपर घूँसों और थप्पड़ों की वर्षा होने लगी।

"बदमाश, शोहदा, लुच्चा! खुल गई तेरी कलई। अगर मैं जानता होता कि तू ऐसा है, तो इस घर में तुझे हरगिज़ क़दम न रखने देता।"

"आप फ़िज़ूल इलज़ाम लगा रहे हैं, भाई साहब!" गोपाल ने गिड़गिड़ा कर कहा—"कोई बात नहीं थी। बहिन मुझे पानी देने आई थीं।"

"पानी देने आई थी!" घूँसा जमाकर और दाँत पीसकर रामेश्वर ने कहा—"अब तेरी कोई बात नहीं सुनना चाहता। बस, तू फ़ौरन यहाँ से निकल जा, वर्ना तेरी ऐसी गत बनाऊँगा कि तू उम्र भर चारपाई से उठने के काबिल नहीं रहेगा।"

गोपाल तेज़ी से भागा और बैठक में चला गया। दो मिनट के बाद अपना ट्रंक लिये हुए वह बैठक से निकल गया।

"बस, अब कभी यहाँ आने या रजनी से मिलने की कोशिश न करना, वर्ना हाथ-पैर तोड़ दूँगा!"

तेज़ी से दरवाज़ा खोलकर गोपाल तुरंत घर से बाहर हो गया।

रामेश्वर दो क्षण निस्तब्ध खड़ा रहा। फिर आगे बढ़कर उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया।

उधर रजनी दालान में खड़ी थर थर काँप रही थी। लौटकर वह उसके सामने खड़ा हो गया। आँचल में मुख छिपाकर रजनी सिसकियाँ भरने लगी।

रजनी उसी तरह आँसू बहाती बैठी रही।

"अपने सम्पूर्ण मन से मैंने मान लिया कि तू मेरी आराध्य देवी है और तुझे प्यार किया, तेरी पूजा की, आराधना की। फिर भी तू इतनी अच्छी बनी रही, सबसे अधिक आश्चर्य मुझे इसी बात पर है। मेरा तो खयाल है कि मिट्टी की प्रतिमा ही क्यों न हो, अगर कोई उसे देवी मानकर उसकी उपासना करे, तो उसे सचमुच देवी बन जाना चाहिये। खैर, जो हो, मैं यह नहीं देख सकता कि जिस चीज़ को मैं अपनी समझूँ, उस पर कोई दूसरा हाथ लगाये। अपनी चीज़ पर किसी अन्य व्यक्ति को हाथ लगाने का अधिकार मैं नहीं दे सकता। जो हुआ सो हुआ, अब मैं इस बात का प्रबन्ध कर दूँगा कि कोई अन्य व्यक्ति मेरी चीज़ पर हाथ न लगा सके।"

रजनी सिहरकर तेज़ी से सिसकियाँ भरने लगी।

"रजनी! चोर जब चोरी करते पकड़ा जाता है, तो उसे बहुत सख्त सज़ा मिलती है। जानती हो न!"

रजनी काँप उठी। भर्राये हुए कण्ठ से उसने कहा—"मुझसे बड़ी भूल हुई। इस बार मुझे क्षमा कर दो।"

"क्षमा! यह नहीं हो सकता। मेरे पास जो कुछ था, वह सब मैं तुझे दे चुका, रजनी अब जो कुछ माँग रही है, वह मेरे पास नहीं है। मैं काफी धोखा खा चुका। अब आगे खतरा उठाना मेरे लिये असम्भव है। तुझे अब मैं वहाँ पहुँचा दूँगा, जहाँ इस संसार का कोई व्यक्ति तुझे हाथ न लगा सकेगा।"

रजनी ज़ोर से रो पड़ी। उछलकर, उसे गिराकर, वह उसके पेट पर चढ़ बैठा। उसके हाथ कस गये रजनी के गले पर। अगाध दीनता, अपार विनय फूट पड़ी रजनी की आँखों में।

लेकिन रामेश्वर के हाथ कसते गये—कसते गये।

समाप्त हो गया यह जघन्य कृत्य। रजनी का निर्जीव शरीर लुढ़क गया एक ओर।

नशा उतर गया। रामेश्वर अपनी चारपाई पर सिर पकड़कर बैठ गया। सहसा भयानक भय उसके हृदय में उमड़ आया। उसका शरीर पत्ते की तरह काँपने लगा। पुलिस, अदालत, दण्ड—प्राण-दण्ड! भयावह चित्र दौड़ने लगे उसकी आँखों के सामने। उसके मन में एक चिन्ता आँधी की तरह उठकर चक्कर काटने लगी—अपनी रक्षा का फौरन उपाय करना चाहिये। वह सब कुछ भूल गया उस चिन्ता के सामने। उठकर कोट पहिनकर, एक बड़ा ताला और चाबी लेकर वह तेज़ी से नीचे उतरा। सावधानी से दरवाज़ा खोलकर उसने इधर उधर दृष्टि दौड़ाई। किसी ओर कोई दिखाई नहीं दिया। तब घर से बाहर निकलकर, दरवाज़ा भेड़कर, साँकल चढ़ाकर, ताला लगाकर, वह तेज़ी से एक ओर चल दिया। इधर उधर दृष्टि दौड़ाता हुआ वह तेजी से चला जा रहा था। सावधान था, चौकन्ना था, सजग था। मौका आ पड़ने पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति से भाग निकलने को पूरी तरह तैयार था, इसलिये कि उसे बच निकलने की प्रबलतम चिन्ता थी। और किसी बात का उसे ख्याल नहीं था परवाह नहीं थी। वह चला जायगा, चला जायगा बहुत दूर—बहुत दूर, जहाँ वह पूरी तरह सुरक्षित रह सके। जहाँ उसका कोई रिश्तेदार न हो, संगी-साथी न हो, मेली-मुलाक़ाती न हो, जहाँ वह सबके लिये अजनबी हो।

कितनी ही धुँधली, अँधेरी, सुनसान गलियाँ और सड़कें खिसक गईं उसके पैरों के नीचे से। वह भागा जा रहा था—भागा जा रहा था।

× × ×

धड़-धड़ धड़! भक भक भक! भक भक-भक! भयानक शोर-गुल करती सहारनपुर एक्सप्रेस दौड़ती-भागती चली जा रही है। इण्टर का एक डिब्बा है। डिब्बे में बैठे हुए यात्री अपने आपमें उलझे हुए हैं।

रामेश्वर भी उनमना हुआ है अपने में। कुछ सो रहे हैं, कुछ ऊँघ रहे हैं, कई चुपचाप बैठे सिगरेट, बीड़ी पी रहे हैं। धुएँ के गुब्बारे उड़ रहे हैं। तम्बाकू की गंध नाक में घुसी आ रही है। काश, वह भी एक सिगरेट सुलगा पाता! सिगरेट न होता, बीड़ी ही होती, तो भी गनीमत होती! लेकिन यहाँ तो न सिगरेट ही है, न बीड़ी और न सिगरेट, या बीड़ी खरीदने के लिए पैसे ही हैं। पैसे हों कहाँ से! घर से पैसे लेकर तो वह चला नहीं। उस समय पैसे ले लेने का होश किसे था! खैर, न सही खाना, न सही सिगरेट, न सही किसी तरह का कोई आराम! वह सब कुछ सहकर, अगर वह सुरक्षित रह सके, अपने कुकृत्य के परिणाम से बचा रह सके। इसकी व्यवस्था हुई जा रही है, यही सन्तोष का विषय है।

दो छोटे-छोटे स्टेशन आये और निकल गये। उन स्टेशनों पर यह गाड़ी नहीं रुकी। यह एक्सप्रेस है, बड़े-बड़े स्टेशनों पर रुकती है। छोटे-छोटे स्टेशनों पर रुकना उसकी शान के खिलाफ है। खैर, यह कहाँ रुकेगी कहाँ नहीं, इससे रामेश्वर को कोई सरोकार नहीं। उसको चलते जाना है, चलते जाना है वहाँ तक, जहाँ तक यह गाड़ी जाय। और फिर? देखा जायगा फिर। शयनागार। खट्-खट्-खट् की आवाजें। रजनी चली जा रही है नीचे बिल्ली की तरह दबे पाँव। वह खड़ा है सीढ़ी पर। दो छाया मूर्तियाँ लिपटी खड़ी हैं दालान में। 'अच्छा, यह गुल खिल रहा है!' छाया-मूर्तियाँ अलग हो गई हैं एक दूसरे से। वह गोपाल को पीट रहा है। गोपाल भागा जा रहा है अपना ट्रंक लिये। शयनागार। वह चढ़ा बैठा है रजनी के पेट पर। गला दबा रहा है रजनी का। उसकी आँखों का वह दीन, कातर भाव—दिल में बर्छी की तरह घुस जानेवाला वह भाव! ओह, कैसी भयानक गरमी है! दम घुटा जा रहा है। कितना सुस्त है यह गाड़ी! तेजी से, खूब तेजी से यह क्यों नहीं चलती!

गाड़ी की चाल धीमी पड़ती जा रही है, बराबर धीमी पड़ती जा रही है। क्या बात है ? क्या बात है ? अब क्या होगा—क्या होगा ? ऐं! ढेरों गाड़ियाँ! लाइनों का जाल बनता जा रहा है। कितने ही सिगनल इधर उधर गड़े हैं। उधर वह सिगनलों का केबिन है। ज़रूर कोई बड़ा स्टेशन आ रहा है।

हाँ, बड़ा स्टेशन आ रहा है। गाड़ी की चाल बहुत धीमी हो गई है। वह प्लेटफार्म दिखाई दे रहा है। कैसी भीड़ है प्लेटफार्म पर! लो, आ गया प्लाटफार्म। रुक गई गाड़ी। बोल दिया धावा मुसाफ़िरों ने। डिब्बे का दरवाज़ा खुल गया पट से। यात्रियों का रेला घुसा आ रहा है डिब्बे में। 'अरे, ठहरो, ठहरो। दूसरे डिब्बे में जाओ—दूसरे डिब्बे में जाओ। यहाँ जगह नहीं है—जगह नहीं है।' लेकिन कौन सुनता है किसकी! एक पर एक गिरा पड़ रहा है।

गार्ड सीटी दे रहा है। डिब्बों के दरवाज़े पट पट बन्द हो रहे हैं। गाड़ी रवाना होने को है। लो, चल पड़ी गाड़ी। पें! डिब्बे का दरवाज़ा खोलकर यह कौन अन्दर घुस आया ? टी० टी० आई०। गज़ब हो गया!

"टिकट दिखलाओ, टिकट!"

गाड़ी तेज़ी से चली जा रही है। टी० टी० आई० टिकट जाँच रहा है। अब वह इधर आ रहा है।

"टिकट दिखलाइये, टिकट।"

रामेश्वर चुपचाप बैठा रहा।

"आपसे कह रहा हूँ, जनाब!" रामेश्वर का कंधा पकड़कर टी० टी० आई० ने कहा—"टिकट दिखलाइये।"

"मेरे पास टिकट नहीं है।"

"टिकट नहीं है, तो निकालिये रुपये।"

और टी० टी० आई० ने तुरन्त जेब से पेंसिल और रिसीट-बुक निकाल ली।

"निकालिये नौ रुपये बारह आने।"

"रुपये मेरे पास नहीं हैं।"

"अच्छा! टिकट भी नहीं है और रुपये भी नहीं हैं! यह कहने से काम न चलेगा, हजरत! रेलवे आपसे पाई-पाई वसूल कर लेगी।"

रामेश्वर निस्तब्ध बैठा रहा।

"ठहरिये, अभी बतलाता हूँ।"

वह अन्य मुसाफिरों के टिकट देखने लगा। डिब्बे के तमाम मुसाफिर रामेश्वर को गौर से देख रहे हैं। कोई आश्चर्य से आँखें फाड़े हुए है। रामेश्वर गड़ा जा रहा है, सिमटा जा रहा है।

अन्य मुसाफिरों के टिकट देखकर टी० टी० आई० रामेश्वर की बगल में आ बैठा है। बड़बड़ा रहा है वह—"यह सफेदपोशी और यह हरकत! कैसे-कैसे धूर्त, धोखेबाज़, आवारे रेलवे को ठगते फिर रहे हैं। टिकट नहीं खरीदेंगे, लेकिन सफर इस तरह करेंगे, जैसे गाड़ी उनके अब्बाजान की हो।"

बड़बड़ाता जा रहा है टी० टी० आई०। अगर रजनी की तरह इस टी० टी० आई० का भी ! ओह! नहीं-नहीं।

अगला बड़ा स्टेशन आ गया। रामेश्वर का हाथ पकड़कर टी० टी० आई० उसे गाड़ी से उतार ले गया। वह कहाँ लिये जा रहा है उसे?

स्टेशन मास्टर का कमरा है। रामेश्वर का हाथ पकड़े टी० टी० आई० अन्दर घुसता है। फिर एक ओर उसे खड़ा करके, वह एक अफसर के पास जाकर उससे बातें करता है।

वह अफसर रामेश्वर से कई प्रश्न करता है। रामेश्वर चुपचाप खड़ा रहता है, किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देता। टी० टी० आई० बाहर चला जाता है। दो कांस्टेबिल अन्दर आते हैं। वे रामेश्वर के हाथ पकड़कर, उसे बाहर ले जाते हैं।

गाड़ी चली गई है। स्टेशन सूना होता जा रहा है। प्लेटफार्म पर पड़ी हुई एक बेंच पर उन दो कान्स्टेबिलों के बीच रामेश्वर निस्तब्ध, मूर्छित बैठा है। मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठा हुआ है, लेकिन उन विचारों में वह किसीको शरीक नहीं कर सकता।

"सफर करने चले और जेब में पैसा नहीं! क्या गाड़ी अपने बाबा की समझ रखी थी?"

रामेश्वर कुछ नहीं कहता।

"कहाँ रहते हो?"

रामेश्वर खामोश।

"क्या करते हो? कौन लोग हो?"

रामेश्वर वैसे ही गुम सुम बैठा रहता है।

"घर बार है? बाल बच्चे हैं?"

रामेश्वर मुस्करा देता है।

"अरे, यह तो पागल मालूम होता है!" एक कान्स्टेबिल कहता है।

"नहीं जी, योंद बना हुआ ठग है!"

कान्स्टेबिल किसी घरेलू मामले के सम्बन्ध में बात करने लगते हैं। रामेश्वर उसी तरह निस्तब्ध, गुम-सुम बैठा है। विचार धारा चल रही है मस्तिष्क में। अन्दर जैसे आग सुलग रही है। सारा शरीर जैसे झुलसा जा रहा है।

"मैं जरा घर जाता हूँ, रामसुमेर!" एक कान्स्टेबिल ने कहा—"दस मिनट में लौट आऊँगा। तब तक तुम इसे देखना।"

"जल्दी आना, उजागिर!"

"बहुत जल्द आऊँगा!" वह चला गया।

कई मिनट बीत गये। दूसरा कान्स्टेबिल ऊँघने लगा। दो क्षण में उसका सिर बेंच की पीठ पर टिक गया और वह खुर्राटे भरने लगा।

इधर-उधर देखकर रामेश्वर धीरे से उठा और दबे पाँव चार कदम चलकर फाटक की ओर लपका। ज़रा देर में वह स्टेशन के बाहर पहुँच गया। अब कौन पकड़ सकेगा उसे?

सूना सड़क है। रामेश्वर दौड़ता चला जा रहा है। नगर बहुत पीछे छूट गया है। जितनी देर से वह दौड़ रहा है, कै मील दौड़ चुका है, उसे कुछ पता नहीं। अन्दर आग सुलग रही है, गला सूखा जा रहा है। पानी मिलना चाहिये, फौरन मिलना चाहिये। उधर वह क्या दिखाई दे रहा है? शायद कोई गाँव है। हाँ, कोई गाँव। वहाँ ज़रूर मिल जायगा पानी।

गाँव आ गया। एक ओर एक कुयें पर एक आदमी पानी भर रहा था। रामेश्वर धीरे धीरे कुयें के समीप गया।

"ज़रा मुझे पानी पिला दो, भैया!"

"अच्छा, बाबूजी।"

ग्रामीण ने उत्साहपूर्वक पिला दिया पानी। अच्छा तो नहीं लगा, लेकिन चित्त काफ़ी शान्त हो गया।

"स्टेशन यहाँ से कितनी दूर है?"

"पास ही है।"

"तुमने बड़ी कृपा की मेरे ऊपर।"

"नहीं, बाबूजी, कृपा की इसमें कोई बात नहीं।"

"किस तरफ है स्टेशन?"

"सड़क पर जाकर दाहिने हाथ की तरफ मुड़ जाना।"

"जय रामजी की!"

"जय राम, बाबूजी।"

ज़रा देर में वह फिर सड़क पर पहुँच गया और स्टेशन की ओर तेज़ी से चल पड़ा। अब दौड़ने की ज़रूरत नहीं। यहाँ कौन पकड़ने आयगा!

अँधेरा हो गया। स्टेशन सामने आ गया। पास पहुँचकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। स्टेशन पर मलीन लालटेनें टिमटिमा रही थीं। सन्तोष की साँस लेकर रामेश्वर पैर फैलाकर लेट गया।

कितना समय बीत गया? रामेश्वर को कुछ पता नहीं चला। वह तो अपने अन्दर उलझा हुआ था।

हल्की धड़धड़ाहट वायुमण्डल में गूँज उठी। धड़धड़ाहट बराबर और पकड़ती गई। गाड़ी आ रही है—बेशक गाड़ी आ रही है। वह उठ खड़ा हुआ और धीरे धीरे स्टेशन की ओर चला।

गाड़ी आ गई। मुसाफिर-गाड़ी थी वह। आगे बढ़कर, इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर, रेलिंग फाँदकर वह प्लेटफार्म पर पहुँच गया। वह डिब्बों का ध्यानपूर्वक देखता हुआ आगे चलता गया। पहले दरजे के एक डिब्बे के समीप पहुँचकर उसने अन्दर झाँका। उसमें एक यात्री था। वह एक बर्थ पर पड़ा सो रहा था। धीरे से दरवाजा खोलकर रामेश्वर अन्दर पहुँच गया।

गार्ड ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। दरवाजा धीरे से बन्द करके वह बैठ गया। वह भद्र, सम्पन्न यात्री उसी तरह सोता रहा। उसकी बर्थ के नीचे एक बड़ा-सा सूटकेस रखा हुआ था और एक सुन्दर अटैची-केस। एक ओर एक खूँटी पर एक कोट टँगा हुआ था और ऊपर के बर्थ पर एक टोप रखा हुआ था।

धड़ धड़! भक् भक्! भक् भक्! दौड़ती भागती, मील पर मील तय करती गाड़ी चली जा रही है। और वह यात्री है कि उसी तरह बिलकुल बेखबर सो रहा है। क्या वह इसी तरह सोता ही रहेगा? अगर वह जागेगा और उससे प्रश्न करेगा, तो वह क्या उत्तर देगा? कह देगा वह जो कुछ ठीक जँचेगा। वह टी० टी० आई० नहीं है, रेलवे का कोई बड़ा अधिकारी भी नहीं जान पड़ता। फिर उसे कुछ कहने सुनने का अधिकार ही क्या है? और अगर वह निपटना चाहेगा तो

वह निपट भी सका अच्छी तरह। इस समय वह सिपाही भी निपट सकता है।

कई छोटे-छोटे स्टेशन आये और निकल गये। और वह दानी वैसे ही सो रहा था। आखिर बात क्या है! उठकर धीरे धीरे वह उस बर्थ की ओर बढ़ा। पास पहुँचकर, रुककर, झुककर, वह उस ओर से देखने लगा। मदिरा की हलकी-सी गंध उसकी नाक में पहुँची। अच्छा, यह बात है। वह धीरे धीरे फिर अपने स्थान पर आ बैठा।

गाड़ी की चाल धीमी पड़ने लगी। सितारे से सिगनल इधर-उधर खड़े दिखाई देने लगे। कोई बड़ा स्टेशन आ रहा है। प्लेटफार्म दिखाई देने लगा। बस, आ गया अवसर। वह उठकर फिर धीरे धीरे उस बर्थ के समीप पहुँचा। आगे बढ़कर उसने कोट की जेबें टटोलीं। उसमें था एक फाउन्टेन-पेन, एक सिगरेट-केस, एक दियासलाई का बक्स, एक रूमाल। सिगरेट केस और दियासलाई अपनी जेब में डालकर और अटैची केस उठाकर वह दरवाज़े के समीप खड़ा हो गया।

गाड़ी रुकी। तुरन्त दरवाज़ा खोलकर वह पीछे की ओर लाइन पर उतर गया। तेज़ी से क़दम बढ़ाता हुआ वह काफ़ी दूर निकल गया। उस सुनसान स्थान में एक लाइन पर बैठकर उसने शीघ्रतापूर्वक वह अटैची केस खोला। दियासलाई जला-जलाकर वह देखने लगा। अटैची केस में व्हिस्की का एक चिपटा अद्धा था, नोटों का एक बण्डल था, पर्स था, थोड़े से कागज़-पत्र थे। अद्धे में थोड़ी-सी शराब बाक़ी थी। शराब पीकर, नोटों का बण्डल और पर्स अपनी जेब में डालकर, अद्धा और अटैची केस एक गड्ढे में फेंककर वह एक ओर तेज़ी से चल पड़ा।

ज़रा देर में वह स्टेशन के बाहर पहुँच गया। अब पैसे की तंगी उसे नहीं रहेगी। कोई टी० टी० आई०, रेल का कोई अन्य अफ़सर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

× × ×

दो वर्ष बीत चुके हैं।

दिल्ली, लाहौर, पेशावर, कलकत्ता, मद्रास, कोलम्बो, बम्बई, करांची—वह सारे देश की परिक्रमा कर चुका है। सदैव यात्रा ही करता रहता है। हफ्ता, पन्द्रह दिन से अधिक वह कहीं ठहरता नहीं। ज्यादा दिनों तक कहीं ठहरना वह उचित भी नहीं समझता। उसमें खतरा जो रहता है।

जिस पथ का वह पथिक है, वह बड़ा खतरनाक है। उसका अपना एक दल है—अपराधियों का एक दल। उस दल का वह सरदार है। धन की कमी नहीं है। ऐश्वर्य उसके पैरों पर लोटता है। बड़े ठाट बाट से, बड़े ऐश से ज़िन्दगी गुज़र रही है। लेकिन उसके अन्दर जो एक छोटा-सा दिल है, वह पीड़ा से कराहता रहता है। शान्ति उसके लिये नहीं है। संसार का ऐश्वर्य, जीवन की मधुरिमा, सुनहरे दिन, रँगीली रातें—किसी चीज़ में उसे शान्ति नहीं मिलती। उसका कोई इलाज नहीं।

भय से वह मुक्त हो चुका है। उसके दुस्साहस की सीमा नहीं है। लोग उसके नाम से काँपते हैं। पुलिस उससे हैरान हो गई है। लेकिन जब उसे उस रात की याद आती है तो वह पत्ते की तरह काँप उठता है, उसका सब-कुछ-सा हो जाता है। वह भूल जाना चाहता, सदैव के लिये भूल जाना चाहता है—उस रात की बात को, लेकिन भूल नहीं पाता, किसी तरह भूल नहीं पाता। मदिरा की सहायता से विस्मृति आ जाती है कुछ समय के लिये, लेकिन सदैव के लिये नहीं।

रँगीली रात है। तारा बाई की सजी-धजी बैठक है। साज़िन्दे साज मिला रहे हैं। नाइजा सामने बैठी, छवि की मधुरिमा की लहरें बिखेर रही है। ह्विस्की और पानी एपिल से भरे शीशे के गिलास में बर्फ के टुकड़े घण्टियों की तरह टुनटुना रहे हैं। दर्द की टीस अन्दर मौजूद है, फिर भी सब कुछ बड़ा अच्छा लग रहा है।

गिलास उठ रहा है धीरे धीरे आगे की ओर। नशा अभी काफ़ी नहीं है, और पीने की ज़रूरत है। अरे, यह धुआँ-सा क्या उठ रहा है गिलास के अन्दर! धुआँ उठ रहा है। यह क्या है—यह क्या है! वाह दृश्य—वही दृश्य—वही दृश्य! श्मशानागार है। रजनी अपनी चारपाई पर पड़ी हुई है। वह उसके पैर पर चढ़ा बैठा है और उसके हाथ कसे जा रहे हैं रजनी के गले पर। आँखों में अपार विषाद भरे हुए रजनी उसकी ओर देख रही है—दीन, कातर दृष्टि से।

साज़ बज रहे हैं। बाईजी गा रही हैं। लेकिन साफ़-साफ़ कुछ भी नहीं सुनाई दे रहा है। वह आँखें फाड़े देख रहा है गिलास के अन्दर। दिल पर चोटियाँ चल रही हैं। अब देखा नहीं जाता—देखा नहीं जाता।

उसने बरबस आँखें बन्द कर लीं। गिलास उसके हाथ से छूट कर फ़र्श पर गिर पड़ा, वह मसनद पर लुढ़क गया।

गाना बन्द हो गया। साज़िन्दों ने साज़ रख दिया। बाईजी के होश उड़ गये।

"अरे यह क्या हुआ—क्या हुआ! पानी लाओ—पंखा लाओ!"

बाईजी रामेश्वर को सँभाल रही हैं। रामेश्वर आँखें बन्द किये निश्चेष्ट पड़ा है। एक मीरासी पानी लाने दौड़ा जा रहा है, दूसरा पंखा लाने भागा जा रहा है।

जल के छींटे दिये गये। पंखा झला गया। ज़रा देर के बाद रामेश्वर ने आँखें खोल दीं।

"कैसी तबीअत है?" बाईजी ने चिन्तित स्वर में पूछा।

"अब ठीक है!" उठते हुए रामेश्वर ने उत्तर दिया।

"लेटे रहिये—लेटे रहिये!"

लेकिन वह उठकर बैठ गया।

"क्या तकलीफ़ हो गई थी?"

"चक्कर-सा आ गया था।"

वह उठने लगा।

"बैठिये—बैठिये। कहाँ जा रहे हैं आप?"

"अब माफी चाहता हूँ।"

उधर जाकर वह जूते पहिनने लगा। लपक कर बाईजी ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"रात अभी शुरू ही हुई है और आप चले जा रहे हैं। आपने तो आज यहां रात भर रहने का इरादा ज़ाहिर किया था।"

"माफ करो। किसी दूसरे दिन आऊँगा।"

बाईजी के हाथ में दस दस के पाँच नोट देकर वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा।

"जरूर आइयेगा, मोहन बाबू! इन्तजार करती रहूँगी।"

"जरूर आऊँगा।"

किसी तरह सड़क पर पहुँचकर वह एक तांगे पर सवार हो गया।

"नेशनल होटल चलो।"

"बहुत अच्छा, हुजूर!"

तांगा चल पड़ा। हवा के झोंके लगने लगे। चित्त कुछ हलका हुआ।

कैसी विचित्र है यह माया की नगरी! यहाँ कोई किसीका नहीं होता। रजनी उसकी नहीं हुई, वह रजनी का नहीं हुआ। रजनी ने बेवफाई की, उसने उसका गला काट दिया। प्रणय, प्रीति, त्याग, तपस्या—इन सबका यहाँ कोई महत्व नहीं। यहाँ तो बस, स्वार्थ ही स्वार्थ है।

जीवन की उस अन्तिम घड़ी में रजनी ने क्षमा मांगी थी। वह उसे सब कुछ दे चुका था। उसकी अन्तिम मांग क्या वह पूरी नहीं कर सकता था? काश! उसने उसे क्षमा कर दिया होता! कितना पावन, कितना सुन्दर ... वह दृश्य! आत्मा का सुख

सँभल जाती। न सुधरती, तो वह उसे त्याग देता। बड़ा कड़ुवा होता उसका वह त्याग—बेशक बड़ा कड़ुवा होता। लेकिन उसके जीवन में आज जो कड़ुवापन भर गया है, उसके मुकाबले में तो शायद वह कड़ुवापन कुछ न होता। जाने क्या हो गया था उसे उस समय।

किस काम का है यह जीना? अपराध पर अपराध—नित्य-नया अपराध! हर घड़ी बचते रहो, भागते रहो, छिपते रहो। ओर-छोर नहीं है इस दौड़-भाग का—लुका-छिपी का। इह-लोक, पर-लोक—सब बिगड़ गया।

कैसे सुन्दर थे वे दिन, जो रजनी की संगति में व्यतीत हुए थे! वैसा सुख जीवन में कभी नहीं मिला। मदिरा, नारी, धन-दौलत, आज सब-कुछ प्राप्त है, लेकिन वैसा सुख कहीं कभी नहीं मिलता। रजनी! प्यारी रजनी!

रजनी की आँखों का वह भाव! ओह! वह भाव! उसे वह सह नहीं सकता—किसी तरह सह नहीं सकता। दारुण से दारुण यन्त्रणा वह सह सकता है, लेकिन उसे वह सह नहीं सकता—किसी तरह सह नहीं सकता।

होटल पहुँचकर, अपने कमरे में जाकर, बत्ती जलाकर, उसने दरवाजा बन्द कर दिया। फिर कागज का पैड और फाउंटेनपेन लेकर वह मेज पर जा बैठा और लिखने लगा अपनी आत्म-कथा। वह क्या लिख रहा है अपनी आत्म-कथा? इसलिये कि अपने भेद अब वह अपने ही तक सीमित नहीं रखना चाहता।

वह लिख रहा है पूर्ण तल्लीनता से। कलम चल रही है धीरे-धीरे कागज पर। तेजी से वह नहीं लिख सकता। लिखने का उसे अभ्यास नहीं है। अपने भावों को सजाने-सँवारने की कला से वह परिचित नहीं। वह लिख रहा है अपनी उखड़ी-बिखरी भाषा में मनोयोगपूर्वक। सारी बातें विस्तारपूर्वक कागज पर उतर रही हैं। आज वह सब कुछ लिख डालेगा। आज कोई बात छिपाए रखने की जरूरत नहीं रही।

घड़ी की सुइयाँ धीरे धीरे चल रही हैं। बारह—एक—दो—तीन ! कब तक लिखता रहेगा वह ? अब समय अधिक नहीं रहा। अब समाप्त कर देना चाहिये, शाम हो समाप्त कर देना चाहिये यह कार्य।

एक घंटा और निकल गया। अन्तिम शब्द लिखकर, उठकर, उसने हाथ-पैर सीधे किये। फिर उस ओर जाकर, सूट केस खोलकर उसने ह्निस्की का अद्धा निकाला और एक रिवाल्वर। गोलियाँ भरकर रिवाल्वर मेज पर रख दिया और अद्धा खोलकर एक साथ म सारी शराब पी गया। फिर उसने एक सिगरेट जलाई। सिगरेट उसे बहुत प्रिय है। अन्तिम बार एक सिगरेट पी लेने की इच्छा भी पूरी हो जानी चाहिये।

धुएँ के गुबारे फेंकता हुआ वह कमरे में टहलता रहा। सिगरेट खत्म हो गई। सिगरेट का जलता हुआ टुकड़ा ऐशट्रे म फेंककर, उसने रिवाल्वर उठा लिया।

निशाना सध गया।

"रजनी ! प्यारी रजनी ! अपने जीवन की अन्तिम घड़ी म तूने मुझसे क्षमा-याचना की थी। म तुझे क्षमा नहीं कर सका। इस बात का मुझे हार्दिक खेद है। अब म स्वयं तेरे पास आकर तुझसे क्षमा माँगूँगा। अगर मैंने सच्चे दिल से तुझे प्यार किया है और उसी अटल प्रेम के कारण तेरी हत्या की है, तो मुझे विश्वास है कि तू मुझे अवश्य क्षमा कर देगी ! रजनी ! प्यारी रजनी !"

धायँ ! धायँ !

रिवाल्वर हाथ से छूटकर फर्श पर गिर पड़ा। रामेश्वर पलंग पर लेट गया।

उसकी छाती से रक्त के फव्वारे छूट रहे थे। लेकिन उसके ओठों पर मुस्कान खेल रही थी, चेहरे पर शान्ति बरस रही थी।

होटल में खलबलाहट मच गया था। लोग इधर उधर दौड़ रहे थे, एक दूसरे से प्रश्न

"नहीं बनूंगी कंटक"

विश्व के रणांगन पर युद्ध-दानव भयानक गति से तांडव नृत्य कर रहा है। यद्यपि उसके दाँत के नीचे हैं, अफ्रीका पर उसका प्रभाव पड़ने लगा है। पोलैण्ड का निशान खत्म हो गया, नॉर्वे, हॉलैण्ड, बैलजियम और फ्रांस बन्दी हो गए, ग्रीस पराजित होकर, बुरी तरह घायल होकर, तड़प रहा है। केवल ब्रिटेन अभी तक मैदान में डटा खड़ा है। नाजीवाद समस्त संसार को निगलकर अपनी तानाशाही कायम करना चाहता है। ब्रिटेन स्वाधीनता और जनतन्त्र की शक्तियों का नेतृत्व कर रहा है। एक ओर है शक्ति का भयानक उन्माद— दूसरी ओर है असीम धैर्य, अपरिमित बल, गम्भीर साहस।

पराधीनता के बन्धनों में जकड़ा हुआ भारत सोच रहा है कि इस युद्ध के बाद वर्तमान व्यवस्था के ध्वंसावशेष से जिस नवीन व्यवस्था का जन्म होगा उसमें उसका स्थान क्या होगा। उसके शासक सुदूर, आशापूर्ण भविष्य की ओर इंगित कर रहे हैं। और भारत उस भविष्य की ओर सन्देहपूर्ण दृष्टि से देख रहा है। पर बहुत बड़े वर्ग का मत है कि हमें बिना किसी शर्त के ग्रेट ब्रिटेन की सहायता करनी चाहिये।

ऐसे ही लोगों में एक हैं चन्द्रमोहन कपूर। युद्ध के आरम्भ काल ही से उसमें भाग लेने के लिये वह तड़प रहा था। अवसर आया। वह भारतीय हवाई सेना में भरती हो गया। थोड़े ही समय में भारत में अपनी शिक्षा का सारा कोर्स उसने समाप्त कर लिया। तब विशेष शिक्षा के लिये वह इंगलैण्ड भेजा गया। वहाँ भी उसने वैसी ही तेजी दिखलाई। कुछ दिनों की शिक्षा के बाद ही वह समस्त परीक्षाओं में

दोनों के बच्चे ... है । युद्ध की समाप्ति के पश्चात् घर लौटकर वह उस पूर्ण तथा अपना बना लेगा, और एक सुन्दर, सुव्यवस्थित गृहस्थ की भाँति जीवन व्यतीत करेगा ।

× × ×

१७ मार्च । गरजती रहीं, वायुयान घहराते रहे । तोपों की भयानक मार से पृथ्वी हिल हिल उठती रही । आगे बढ़कर, घुसकर लड़ाई हुई शत्रु की सेना ने धावा किया । ब्रिटिश सेना भी आगे बढ़ी । डटकर युद्ध होने लगा । टैंकों से टैंक भिड़ गये । गोलियों की बौछारें चलने लगीं । लड़ाकू और बम-वर्षक वायुयान डुबकियाँ लगा लगाकर बम और गोलियाँ बरसाने लगे । पैदल सैनिक गाड़ियों पर मशीनें धर, कर निकल पड़े । बख्तरबन्द गाड़ियाँ उन्हें रौंदने लगीं । भयानक मार-काट का बाजार गर्म हो गया । बारूद और पेट्रोल के धुएँ से वायु मण्डल भर गया । फिर दुश्मन के पैर उखड़ गये । कितने ही टैंक, बख्तरबन्द मोटरें, मशीनगनें, ढेरों अन्य सामान, हजारों आहत तथा घायल सैनिक छोड़कर शत्रु-सेना भाग निकली । और उसे अत्यधिक क्षति पहुँचाई गई ।

रात हो गई है । ब्रिटिश सेना का पड़ाव है । सैनिक विश्राम कर रहे हैं । एक छोटे खेमे के सामने एक कुरसी पर बैठा हुआ चन्द्रमोहन चाय पी रहा है । उसके सामने एक छोटी-सी मेज पर टोस्ट, भाप देती हुई चाय से भरा पात्र और उबाले हुये अण्डे रखे हैं । दिन भर के कठिन परिश्रम से वह बेतरह थक गया है । अब वह कुछ देर आराम करेगा, ताकि थके हुए शरीर में फिर ताजगी आ जाय । आज दुश्मन के दाँत खट्टे हो गये । ऐसी करारी हार खाई है कि याद करेगा । इसी तरह बराबर जीत होती जाय, तो थोड़े ही दिनों में उसका जोश ठण्डा हो जाय और घुटने टेककर गिड़गिड़ाता नजर आये । जमकर लड़ने ही में काम चलेगा । खूब जम-जमकर आक्रमण करना चाहिये । पात्र

उठा कर वह चाय पीने लगता है। एकाएक एक सैनिक उसके सामने आता है और कायदे से सलाम करता है। सिर हिलाकर चन्द्रमोहन उसकी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखता है।

"जनरल स्टेक आपसे मिलना चाहते हैं, मिस्टर कपूर।"

"अच्छा।"

"दस मिनट में उनके पास पहुँच जाइये।"

"फौरन आता हूँ। चलो।"

सैनिक चला गया। चाय का पान मेज़ पर रखकर, उठकर, सिगरेट जलाकर, वह तेज़ी से चला, जनरल स्टेक के खेमे की ओर।

पाँच मिनट बाद कई सहयोगियों के साथ वह उपस्थित हुआ जनरल स्टेक के सामने। जनरल महोदय के सामने मेज पर एक नक्शा फैला हुआ था, और वह उसे ध्यान से देख रहे थे। अभिवादन के बाद उन्होंने कहा—"अब लोग थक तो ज़रूर गये हैं, लेकिन मुझे भय है कि मुझे आपको कष्ट और देना पड़ेगा। एक बहुत ज़रूरी काम अकस्मात् आ उपस्थित हुआ है, और वह तुरन्त किया जाना चाहिये।"

एक दफा ऊपर नक्शे में एक स्थान पर इशारा करके वह बोले—"एक स्थान दक्षिण पश्चिम की ओर क़रीब तीन सौ मील की दूरी पर है। यहाँ एक बड़ा घना जंगल है। जंगल के बीच में खास तौर से तैयार किया हुआ एक खुला मैदान है। मुझे अभी थोड़ी देर पहले सूचना मिली है कि यह स्थान दुश्मन का एक अड्डा है। यहाँ एक हवाई अड्डा है, पेट्रोल के बड़े-बड़े टैंक हैं, खाद्य और हल्के बारूद की गोदामें हैं, टैंक दल, मोटर दल और पैदल टुकड़ियों का भारी जमाव है, इस पड़ाव पर आप लोगों को तुरन्त धावा करना होगा। अगर हम इसे नष्ट कर सके तो शत्रु बहुत दिनों तक सँभल न सकेगा और हम सफलतापूर्वक प्रत्याक्रमण कर सकेंगे। एक बम-वर्षक और [illegible] लड़ाकू वायुयानों का दल जायगा। मिस्टर कपूर और मि—

आप दोनों इस दल का नेतृत्व करेंगे। मुझे आशा है कि आप लोग अपना फर्ज पूरी से अदा करेंगे। अब आप लोग जा सकते हैं।"

सलाम करके वे बाहर निकले। पन्द्रह मिनट में वायुयानों का वह दल तैयार हो गया। सिगनल हुआ। झुण्ड के झुण्ड हवाई जहाज इतने से भयानक शोर के बीच जमीन से उठ उठकर आकाश में उड़ने लगे। दल चल पड़ा।

चाँदनी रात थी। आकाश साफ था। बड़ा मनोरम दृश्य था चारों ओर। नीचे सैकड़ों मील तक फैला हुआ रेगिस्तान चाँदी की तरह चमक रहा था। वह दल चला जा रहा था दो सौ मील प्रति घण्टे की गति से। सबसे आगे थे दो बम-वर्षक। एक पर सवार था चन्द्रमोहन, दूसरे पर जानसन। उत्साह से खिला हुआ था चन्द्रमोहन का चेहरा, निकट स्फूर्ति दौड़ रही थी उसकी नस-नस में। थकावट बिलकुल गायब हो चुकी थी।

एक घंटे के बाद वे एक पहाड़ी प्रदेश के ऊपर पहुँच गये। थोड़ी देर के बाद पहाड़ियों का सिलसिला खत्म हो गया। एक छोटे से पथरीले मैदान के बाद मीलों तक फैला हुआ एक सघन वन था। रेडियो के द्वारा जानसन ने पूछा—"कपूर! यही तो मालूम होता है वह जंगल!"

"बेशक!"

"आक्रमण का समय आ गया!"

"जरूर!"

"कुछ उतरकर देखना चाहिये!"

"उतरो!"

दोनों बम वर्षकों ने तुरन्त कुछ उतरकर बड़ी तेजी से एक चक्कर लगाया। निस्सन्देह यही था दुश्मन का वह पड़ाव। जंगल के बीच में मैदान था, और उसके एक सिरे पर कई हवाई जहाज खड़े दिखाई

दे रहे थे। चन्द्रमोहन से परामर्श करने के बाद जानसन ने सिगनल दिया। हमला शुरू हो गया। ब्रिटिश बम-वर्षक और लड़ाकू विमान गोते लगा-लगाकर बम और गोलियों की वर्षा करने लगे। शत्रु सचेष्ट हुआ। उसकी वायुयान विध्वंसिनी तोपें चलने लगीं। एक गोला चन्द्रमोहन के विमान की बगल से निकल गया। मुड़कर चन्द्रमोहन ने कई बम गिराये। भयानक विस्फोट हुआ। चन्द्रमोहन का विमान भी हिल गया। अग्नि की ऊँची ऊँची लपटें उठने लगीं। आग तेज़ी से फैलने लगी। चारों ओर दिन जैसा प्रकाश छा गया। आक्रमण करना अब और भी सरल हो गया। धड़ाके पर धड़ाके होने लगे। पैट्रोल के टंकों में आग लग गई, रसद और अन्य सामग्रियों के गोदाम भी जल उठे। इस तरह आध घंटे तक आक्रमण होता रहा। शत्रु के अनेक लड़ाकू वायुयान, जो बेकार नहीं हुए थे, उठने में सफल हुये। चन्द्रमोहन उनके सामने पड़ गया। गोलियों की बौछार आई उसके वायुयान पर। आहत हुआ वह, और क्षति पहुँची उसके वायुयान को भी! एक इंजन बेकार हो गया, पेट्रोल की टंकी चूने लगी। एक गोली उसकी बाईं बाँह में लगी, एक दाहनी जाँघ में। तीव्र पीड़ा का अनुभव हुआ उसे, और उसके घावों से रक्त तेज़ी से बहने लगा। किन्तु वह उसी तरह बचने और हमला करने में लगा रहा। ब्रिटिश लड़ाकू यान भिड़ गये दुश्मन के यानों से। रेडियो द्वारा जानसन ने पूछा, "मैं समझता हूँ कि हमारा अभिप्राय सिद्ध हो गया। अगर तुम्हारी राय हो तो हम अब वापस चलें!"

"ठीक है, काम हो गया। वापस चलो। मैं ज़ख्मी हो गया हूँ, मेरे वायुयान को भी क्षति पहुँची है। लेकिन कैम्प तक पहुँचने की कोशिश करूँगा।"

"मेरी सहानुभूति और महान् ब्रिटिश सेना का साहस तुम्हारे साथ है।"

सिगनल दिया गया। दल वापस चला। सब आता था यहाँ पर चन्द्रमोहन के अन्तर में, भयानक पीड़ा हो रही थी उसके। वायुयान भी ठीक नहीं चल रहा था। किन्तु वह चला आ रहा था अपूर्व साहस, हिम्मत और धैर्य से। शत्रु के कई वायुयान टूटकर गिर गये। जो दो चार बचे, कुछ दूर तक पीछा करने के बाद वापस गये।

कैम्प के बाद अपना बड़ा इन्तजार हुआ। वे ऊपर दीख आये गये। वायुयान उतरने लगे। चिन्ता है उड़ी थी चन्द्रमोहन की शक्ति। किन्तु निकट पेट्रोल लगाकर वह उतार लाया अपना यान ज़मीन पर। फिर अचेत हो गया वह। दौड़ पड़े उसके सहयोगी। यान से उतारा गया वह और स्ट्रेचर पर लादकर अस्पताल पहुँचाया गया। तुरन्त आपरेशन करके डाक्टरों ने उसके शरीर से गोलियाँ निकाल लीं। मरहम-पट्टी की गई।

कई घंटे बीत गये। लेकिन उसे होश नहीं आया। नाड़ी कमज़ोर पड़ गई, दिल बैठने लगा। झूलने लगा वह जीवन और मृत्यु के बीच। चिन्ता बढ़ गई डाक्टरों की। रक्त प्रवेश कराया गया उसके शरीर में।

चन्द्रमोहन के असाधारण धैर्य की, साहस की, वीरता की भूरि भूरि प्रशंसा हो रही थी समस्त कैम्प में।

× × ×

सुषमा नारी है, और उसके नारीत्व का एक ममत्व है जिसका ओर छोर नहीं है। उसका यह निस्सीम ममत्व केन्द्रित हो चुका है एक व्यक्ति पर। साहसी है, वीर है, योद्धा है वह व्यक्ति। गर्व है उसे उसके ऊपर। निकट नहीं, बहुत दूर है वह उससे। खेद का विषय है यह उसके लिए। काश, उसके समीप होता वह! किन्तु यह दूरी कम नहीं कर पाती उसके ममत्व की मात्रा को। निष्ठुर है वह? नहीं, नहीं। वह पुरुष है, और चल रहा है अपने ढंग से जीवन के पथ पर। इससे

विपरीत आचरण न होता उसके पुरुषत्व के अनुकूल। वह प्यार करती है इस पुरुषत्व को।

दो महीने से उसका कोई पत्र उसे नहीं मिला। विकल है, व्यथित है, पीड़ित है वह। पत्र पर पत्र लिखती है वह उसे, किन्तु उत्तर नहीं पाती किसी पत्र का। तब एक पत्र लिखती है वह भारत के प्रधान सेनापति को। सूचना आती है एक पखवारे के बाद सेना विभाग से—पायलट चन्द्रमोहन कपूर सख्त बीमार है। उसकी दशा सन्तोषजनक है। चिन्ता का कोई कारण नहीं है।

चिन्ता बढ़ती जाती है उसकी। क्या रोग है उसे? कब से बीमार है वह? कहाँ बीमार है वह? फिर पत्र लिखती है वह सेना विभाग को। उत्तर आता है कुछ समय के पश्चात्—पायलट चन्द्रमोहन कपूर के सम्बन्ध में जितना बतलाया जा चुका है, उससे अधिक बतला सकने में सेना विभाग असमर्थ है।

घिर जाती है वह असीम दुःख से। घुलने लगती है वह अन्दर ही अन्दर। परिणाम भोग रही है वह अपने किये का। किन्तु किया क्या है उसने? कौन दर्द-सर मोल लेता है जान बूझकर?

× × ×

करीब करीब अच्छे हो गये हैं चन्द्रमोहन के घाव। लेकिन ज्वर अक्सर आ जाता है। स्नायु रोग भी पूरी तरह दूर नहीं हुआ है।

मिस्र के एक बड़े सैनिक अस्पताल में वह रोग शय्या पर पड़ा रहता है। बड़े यत्न से सेवा शुश्रूषा हो रही है। डाक्टरों की सम्मति है कि उसकी दशा सन्तोषजनक ढंग से सुधर रही है। उसके पुराने सहकर्मी उसके प्रति उदासीन नहीं हैं। जनरल स्टेक स्वयं देखने आकर उसे गौरवान्वित कर चुके हैं। सहयोगी जानसन अक्सर उसके पास आता है। उसने बताया था उसे कि उन लोगों का वह आक्रमण पूरी तरह सफल हुआ था। उस वन में छिपे शत्रु के समस्त साधन

[illegible] था। इतनी [illegible] होते हुए भी अजीब है कि इसी [illegible] गया है। उसमें अपूर्व [illegible] था उस दिन इस [illegible] कितना अधिक विस्मयात्मक होता था। मृत्यु के द्वार से लौट आया है [illegible], यह ज़िन्दगी [illegible] उसकी। और इसके लिए [illegible] [illegible] [illegible] सी आती है। निनिया के [illegible] [illegible] प्रकट कर चुका है। करुणा, दया और [illegible] की [illegible] है [illegible]। असाधारण सुन्दरी है [illegible] और अभी [illegible] ही है। जब वह आती है उसके [illegible], तो अपार [illegible] उमड़ पड़ता है उसके हृदय में। उस समय [illegible] लगता है उसके पैरों पर। डाक्टरों की अनुमति [illegible] कि वह टहलने जाता है। [illegible] होने पर निनियन भी जाती है उसके साथ। उस समय [illegible] तरह के [illegible] और बड़ा रोचक, [illegible] वार्ता [illegible] होता है। [illegible] के सम्बन्ध में अनेक तरह के प्रश्न करती है वह और वह कहता है अपने प्रिय देश की कथा असीम [illegible] से। वह करता है अपने देश की नदियों, पहाड़ों और झीलों का वर्णन, [illegible] सुन्दर, मनोरम, प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन, मंदिरों, मस्जिदों, [illegible] और [illegible] का वर्णन, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दशाओं का वर्णन, प्राचीन वैभव और वर्तमान [illegible] का वर्णन, अमीरों और गरीबों का वर्णन, वर्गों और श्रेणियों का वर्णन, साहित्य, कला तथा संस्कृति का वर्णन। मुग्ध भाव से, असीम तल्लीनता से सुनती जाती है वह। उस समय कितनी अच्छी लगती है वह!

यों तो सदैव प्रसन्न दिखाई देती है वह, लेकिन कभी-कभी एक [illegible] गम्भीरता छा जाती है उसके चेहरे पर और किसी अज्ञात, आन्तरिक वेदना की छाया झाँकने लगती है उसके मुखड़े से। आश्चर्य और कौतूहल होता है चन्द्रमोहन को। [illegible] उसने सुनना चाह

है उसके मुख से उसकी जीवन-कहानी। किन्तु न जाने क्या, लिलियन टाल जाती है उस विषय को होशियारी से।

एक दिन पूरी हो जाती है उसकी यह इच्छा। शाम हो गई है। दोनों बैठे हैं एक झाड़ी के पीछे घास के हरे, कोमल फर्श पर। शीतल, मंद समीर बह रहा है। रुचिर नीरवता व्याप्त है वायुमण्डल में। चल रहा है वार्तालाप।

"अच्छा, चन्द्रमोहन, आज नहीं टालूँगी तुम्हारा अनुरोध। विषय मुझे प्रिय तो नहीं है, किन्तु आज यह वैसा अप्रिय भी नहीं लग रहा है। तुम सुनना ही चाहते हो, तो सुनाये देती हूँ अपनी जीवन कहानी। कोई खास बात नहीं है इसमें, बिलकुल मामूली है यह कहानी। मुझे दोष न देना, अगर इससे तुम्हारा मनोरंजन न हो।"

"धन्यवाद! मनोरंजन मेरा उद्देश्य नहीं है, लिलियन!"

"इंगलैण्ड के उच्च मध्यम वर्ग के एक प्रतिष्ठित परिवार से मेरा सम्बन्ध है। बचपन ही में मेरी माता का देहान्त हो गया, एक दयामयी चाची ने मेरा लालन-पालन किया। मेरे पिता उन्हें आवश्यक खर्च देते थे। उचित शिक्षा-दीक्षा मिल रही थी मुझे। विपत्ति ने एकाएक फिर आ घेरा। मेरे पिता का भी अकस्मात देहान्त हो गया। उस समय मैं अपने सोलहवें वर्ष में थी। कोई सम्पत्ति नहीं छोड़ी मेरे पिता ने मेरे लिए। चाची की आर्थिक दशा भी सन्तोषजनक न थी। इसलिए विवश होकर पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। अब नौकरी खोजने लगी मैं। कई जगह अर्जियाँ भेजीं, किन्तु असफल रही।

तब मैं देहात से लन्दन चली गई। लन्दन में शीघ्र ही मैं सफल हुई। एक बड़े कारखाने के जनरल मैनेजर, मिस्टर एडवर्ड फाक्स, को एक प्राइवेट सेक्रेटरी की आवश्यकता थी। भेंट करने के बाद उन्होंने रख लिया मुझे। वेतन अच्छा था। आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त हो गई मैं। मेरे साथ

बातचीत का व्यवहार बड़ा सौजन्यपूर्ण था। मैं उनका आदर करने लगी सम्पूर्ण हृदय से। धीरे धीरे दफ्तर से बाहर भी वह मुझ से भेंट करने लगे। लन्दन के मनोरंजक सामाजिक जीवन से भी मैं परिचित होने लगी उनके द्वारा। घनिष्टता बढ़ने लगी हम दोनों के बीच।

एक दिन देहात के मनोरम वातावरण में एक पिकनिक के अवसर पर एलन ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया। अपने प्रति उनके प्रतिदिन बढ़ते हुए आकर्षण से मैं भली भाँति परिचित थी, और जानती थी कि नौबत कहाँ तक पहुँच सकती है। इसलिये कुछ कुछ मैं तैयार थी पहले ही से। कोई आपत्ति मुझे नहीं सूझी। स्वीकार कर लिया मैंने एलन का प्रस्ताव। विवाह हो गया हमारा आडम्बरहीन ढंग से। सुखी था हमारा वैवाहिक जीवन। किन्तु यह सुख अधिक नहीं रह सका एक वर्ष से अधिक। एक अन्य नारी के रूप में एक सर्पिणी ने प्रवेश किया एलेन के जीवन में। अवकाश के समय भी वह घर से गायब रहने लगा। उस स्त्री के प्रति बढ़ती गई उसकी आसक्ति। मेरे प्रति वह पूर्णतया उदासीन हो गया। एक दिन हम दोनों के बीच भारी झगड़ा हो गया। उसमें अलग होकर मैं चाची के पास चली गई।

एक जाली मामला तैयार करके उसने मेरे विरुद्ध अदालत में तलाक की अर्जी दी। मैंने पैरवी नहीं की मुकदमे की। मंजूर हो गई उसकी अर्जी। तलाक हो गया। अन्धकार छा गया मेरे चारों ओर। फिर करनी पड़ी मुझे नौकरी। उसने विवाह कर लिया उस स्त्री से। एलेन भूल गया मुझे, लेकिन मैं भूल नहीं सकी उसे। बाद में सुना मैंने कि वह सन्तुष्ट नहीं है उस स्त्री से। लेकिन मुझे प्रयोजन क्या था इस बात से!

युद्ध छिड़ा। तुम्हारी तरह पाइलट बन कर वह भी सम्मिलित हो गया ब्रिटिश सेना में। फ्लैंडर्स के रणक्षेत्र में वह शत्रु सेना से लड़ता हुआ मरा। शोक में डूब गई मैं। जिस दिन मुझे उसकी मृत्यु की सूचना मिली, उसी दिन सरकार को मैंने अपनी सेवायें पूर्णतया अर्पित कर

"बेहतर है, जनाब !"

उत्तर बड़े स्नेह से जार्ज रडेक ने उससे हाथ मिलाया। उनके इस सौहार्द से गद्गद हो उठा उसका हृदय।

विदाई का समय ज्यों ज्यों निकट आने लगा त्यों-त्यों बढ़ने लगी उसकी विफलता। उदास रहने लगी लिलियन भी। जाना वह नहीं चाहता, लेकिन रुकने की कोई सूरत भी नहीं है।

फकत चार दिन शेष हैं। शाम हो गई। आसीन हैं लिलियन और चन्द्रमोहन झाड़ियों के पीछे अपने सुपरिचित स्थान पर। उदास है समस्त वातावरण।

"तो अब चले जाओगे, चन्द्रमोहन !"

"जाना ही होगा, लिलियन। आज्ञा आई है। कोई चारा नहीं है। विवश हूँ।"

हूक उठती है लिलियन के हृदय में।

"ऐसा सुन्दर समय अब कभी मुझे नहीं मिलेगा, लिलियन। इसकी याद हमेशा मेरे दिल में ताजा रहेगी। तुम्हारी संगति से जो कुछ मुझे मिला है उसकी हमेशा कद्र करूँगा। कभी तुम्हें नहीं भूलूँगा।"

आँसू टपकने लगते हैं लिलियन की आँखों से।

"यह क्या करती हो, क्या करती हो, लिलियन !"

झड़ी लग जाती है आँसुओं की लिलियन की आँखों से। आँसू छलक आते हैं चन्द्रमोहन की आँखों में भी। टूट जाता है एकाएक रुकी हुई भावनाओं का बाँध। वह बाँध लेता है सहसा उसे कर-पाश में। वह भी लिपट जाती है उसके गले से।

शान्त होते हैं वे।

"मेरी ननामी, लिलियन !" उसका कोमल हाथ अपने हाथों में लेकर पूछता है चन्द्रमोहन।

"नहीं, चन्द्रमोहन," सरलता से मुस्कराकर उत्तर देती है जिलियन।

प्रयत्न करके अवकाश ग्रहण कर लेती है जिलियन। आखिर एक दिन मित्रों और सहयोगियों से विदा लेकर दोनों सवार हो जाते हैं जहाज पर। चल पड़ता है जहाज।

चन्द्रमोहन के स्वास्थ्य पर समुद्र यात्रा का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। बम्बई पहुंचते-पहुँचते उसका स्वास्थ्य काफी सुधर जाता है। एक मास तक कुछू में रहने के बाद वह बिलकुल चंगा हो जाता है। डाक्टर उसे पूर्णतया निरोग घोषित कर देते हैं। बँध जाते हैं विवाह के सूत्र में लिलियन और चन्द्रमोहन।

आदेश मिलता है उसे सेना विभाग से कि वह हवाई सेना में भरती होने वाले नये पाइलटों को शिक्षा दे। रवाना हो जाता है वह सपत्नीक कराची की ओर।

×   ×   ×

"सुषमा!" कमला ने कहा—"कुछ सुना तुमने?"

"नहीं तो," कौतूहल से तड़प उठी सुषमा।

"चन्द्रमोहन हिन्दुस्तान लौट आये हैं। उनके घर के लोग उनसे मिलने गये हैं!"

"किससे सुना तुमने?"

"विस्तार से।"

"कहाँ गये हैं उनके घर के लोग?"

"कराची।"

"कब लौटेंगे?"

"अधिक मैं नहीं जानती।"

भारत लौटकर भी उसने अपनी कोई सूचना नहीं दी उसे! बात क्या है आखिर! क्या अपराध हुआ है उससे! रुकना कठिन हो गया विश्वविद्यालय में। चल पड़ी वह घर की ओर।

जम गया एक निश्चय उसके मन में। वह स्वयं जायगी कराची, पता लगायगी उसके बारे में, भेंट करेगी उससे। माँ से पूछ लेना ठीक होगा? नहीं, नहीं, सम्भवत आपत्ति करेंगी वह।

कराची जानेवाली ट्रेनों का पता लगाकर, वह पहुँची घर। चार बजकर दस मिनट पर जानेवाली ट्रेन से जाना ठीक होगा। एक सूटकेस में वह भरने लगी कुछ आवश्यक सामान। कुछ कपड़े रखे, कुछ पुस्तकें रखीं, दो-चार अन्य चीजें रखीं, और रखी एक छोटी-सी शीशी। बहुमूल्य थी वह शीशी। एम० एस० सी० में पढ़नेवाला एक प्रिय सखी की भेंट थी वह। "सुषमा", कहा था उसने, "वक्त पर यह तेरी सहायता करेगी। अगर कभी संसार के तमाम दरवाजे तेरे लिये बन्द हो जायेंगे, तो उस समय यह तेरे काम आयेगी। फूलों की सेज नहीं है यह दुनिया।" माता के नाम पत्र लिखकर एक घंटे के बाद वह रवाना हो गई स्टेशन की ओर।

चार बजे। ट्रेन आई। वह सवार हुई इंटर के एक डिब्बे में। ट्रेन चल पड़ी ठीक समय पर।

तीसरे दिन वह पहुँच गई कराची कुशलतापूर्वक। कराची में चन्द्रमोहन कोई अज्ञात व्यक्ति न था। शीघ्र ही पता लग गया उसके घर का।

दिन का तीसरा पहर था। उसने प्रवेश किया चन्द्रमोहन के बँगले में। एक सेवक सामने आया।

"मिस्टर कपूर घर पर हैं?"

"वह तो नहीं हैं, मेम साहब हैं।"

"कहाँ गये हैं वह?"

"कम्पनी पर।"

"वह मेम साहब कौन हैं?"

"अच्छा सवाल किया आपने! कपूर साहब की बीबी हैं मेम साहब। अभी हाल ही में शादी हुई है। खालिस अंगरेज़ हैं। बड़ी नेक हैं। बड़ा अच्छा मिज़ाज है।"

धक्का सा लगा हुआ उसके ऊपर। अधिक कुछ जानने की इच्छा नहीं रही उसे। लौटी म लौट पड़ी वह। अन्धकार छाया जा रहा था चारों ओर। जवाब दे रहे थे उसके पैर।

अरुणोदय की लालिमा रक्त-रंजित करने लगी गगनमण्डल को। कार पर सवार हुए मिस्टर और मिसेज कपूर। बँगले से बाहर निकली कार, लेकिन आगे नहीं बढ़ सकी। गाड़ी रोककर उतर पड़ा चन्द्रमोहन। उतर पड़ी लिलियन भी। सामने पड़ी थी एक स्त्री की लाश। समीप आकर वह झुका लाश पर। फक हो गया उसका चेहरा। सहम गई लिलियन।

"कौन है यह स्त्री?"

"मेरी प्रमिका।"

"तुमने क्यों छोड़ दिया इसे?"

"तुम्हें मैं इससे ज्यादा प्यार करने लगा।"

"लेकिन वह तुम्हें मुझ से ज्यादा प्यार करती थी।"

"शायद। कहा नहीं जा सकता।"

आँसू छलक आये लिलियन की आँखों में। एक दीर्घ निःश्वास खींचा चन्द्रमोहन ने।

एक कागज दबा था सुषमा के हाथ में। एक छोटी-सी खाली शीशी पड़ी थी एक ओर। कागज लेकर पढ़ने लगा चन्द्रमोहन। लिखा था उस पर—

"चन्द्रमोहन,

एक बार तुम से कहा था मैंने, कटक नहीं बनूँगी तुम्हारे लिये। आज भी वही निश्चय है मेरा। इसलिये विदा हो रही हूँ दुनिया से। सुखी रहो तुम। सुषमा।"

"क्या है यह?"

कुछ कह नहीं सका वह। चुपचाप दे दिया उसने लिलियन के हाथ में वह पत्र। उमड़ते हुये आँसुओं को रोकता हुआ, मनोभावों से लड़ता हुआ वह खड़ा रहा मूर्तिवत्। लिलियन ने भी पढ़ा वह पत्र। आँसुओं की झड़ी लग गई उसकी आँखों से। वह भी अब नहीं रोक सकी अपने को। बरसने

जीवन-क्रम

अपने तरुण पुत्र की ओर अग्निमय नेत्रों से देखते हुये, मुंशी माधवप्रसाद ने कहा—"रात भर तुम कहाँ रहे मोहन ?"

फ़र्श की ओर ताकते हुये, मोहनलाल ने उत्तर दिया—"एक मित्र के यहाँ दावत थी। रात ज्यादा हो गई थी, इसलिये वहीं रह गया था।"

"मित्र के यहाँ दावत थी। बहाना बनाने में तुम ताक हो। मित्र के यहाँ रहे या चौक में नाच का गाना सुनते रहे ?"

"यह बिलकुल झूठ है ! न जाने कौन मेरे खिलाफ हमेशा आपके कान भरा करता है। जरूर यह मेरे किसी दुश्मन की कारवाई है।"

"और मैं यह पूछता हूँ, कि आपका कोई दुश्मन क्यों है ? नेक चलन आदमी का कोई दुश्मन नहीं होता।"

मोहन सिर झुकाये हुये निस्तब्ध बैठा रहा।

"इतनी ऊँची तालीम पाकर भी तुम कुमार्ग पर चलते हो, यह बड़ी शर्म की बात है ! अगर तुम अपनी हालत नहीं सुधारोगे, तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। यह बात याद रखो !" कुरसी छोड़कर, वकील साहब उठ खड़े हुये, और पुत्र के कमरे से बाहर चल गये।

तब मोहन कुरसी से उठा, और बिस्तरे पर लेटकर विचारों में व्यस्त हो गया—"लाला से मेरी शिकायत कौन करता है ? उसका पता लग जाता, तो उसकी अच्छी तरह मरम्मत करा देता। खुमारी अभी तक नहीं गई। जम्हाइयाँ बराबर आ रही हैं। जवानी में कौन

रंगीन मिजाज नहीं होता ! फिर, लाला मेरे ऊपर क्यों खफा हुआ करते हैं ? बूढ़े हो रहे हैं, शायद इसीलिये। अभी उस दिन लाला के लँगोटिया यार रजनी बाबू कहते थे, कि जवानी में लाला की चाल चलन भी ठीक न था। कितने साफ आदमी हैं रजनी बाबू ! अपने ऐबों पर परदा डालना उन्हें नहीं आता। 'जवानी मौज करने के लिये है, बुढ़ापा आक़बत बनाने के लिये !' मैं जिन्दगी के हर पहलू का तजरबा हासिल करना चाहता हूँ। दुनिया में भोंदू बनकर रहना मुझे पसन्द नहीं। लाला खफा होते हैं, तो हुआ करें। थोड़ी देर तक और सो लेना चाहिये।

करवट बदलकर, उसने आँखें बन्द कर लीं। सहसा उसकी स्त्री, चन्द्रावती, ने कमरे में प्रवेश किया। आहट पाकर, मोहन ने पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ।"

"चन्द्रा !"

"हाँ !"

"दरवाज़ा बन्द कर दो, और मेरे पास आओ !"

"नहीं माफ कीजिये। जिसके यहाँ रात भर गुलछर्रे उड़ाते रहे, उसी को इस वक्त भी बुला लीजिये !"

"मेरी बुराई करो ! लाला की बातों में तुम भी आ गईं चन्द्रा ! तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं।"

"इतने दिनों से आपका बदला हुआ रंग अपनी ही आँखों से देख रही हूँ, तब दूसरों की बातों पर विश्वास कैसे न हो ? आपके ऊपर विश्वास करना मेरा कर्तव्य अवश्य है, किन्तु आपको भी तो विश्वास के योग्य बनना चाहिये !"

"तुम्हारा ख्याल गलत है, चन्द्रा ! जैसा मैं पहले था, वैसा ही अब भी हूँ।"

"मेरा ख्याल गलत है! आप शराब पीने लगे हैं, रोज आधी रात से पहले आप घर नहीं लौटते, और अभी जब आये, तो शराब पिये हुए थे।"

"बात यह हुई कि मनोहर के यहाँ दावत थी, और मेरा शरीक होना बहुत जरूरी था। किसी के यहाँ मैं न जाऊँगा, तो मेरे यहाँ कौन क्या आयेगा? दावत में देर हुई और रात बहुत ज्यादा हो गई, इस लिये मैं वहीं ठहर गया था। और दोस्तों ने मुझे जबरदस्ती शराब पिला दी थी!"

"यह बहाना तो आप हमेशा कर दिया करते हैं। लेकिन, आप न पीना चाहें, तो आपको कोई नहीं पिला सकता!"

करवट बदलकर, रजाई से सिर बाहर निकालकर, मुस्कराती हुई आँखों से चन्द्रावती के मुख की ओर देखते हुये मोहन ने गम्भीर भाव से कहा—"चन्दो! अभी संसार का तुम्हें बहुत कम अनुभव है! दोस्तों के जाल से बच रहना असम्भव है!"

मान खिसकने लगा, प्रबल प्रयत्न करने भी वह उसे रोके न रह सकी। उसने किंचित मुस्कराकर कहा—"और बातों में आपसे पार पाना भी असम्भव है!"

हँसकर, रजाई हटाकर, वह चारपाई से कूद पड़ा, और तुरन्त दरवाजा खोल करके मुस्कराता हुआ उसकी ओर बढ़ा। मौके पर चूक जानेवाला आदमी वह न था।

और, चन्द्रावती यह भली भाँति जानती थी, कि कुमार्गगामी पति का सुधार नम्रता ही से किया जाता है, कटुता से नहीं।

× × ×

उसी दिन सन्ध्या समय मोहनलाल सेठ दामोदरदास के सुपुत्र नारायणदास के साथ मोटर पर बैठा हुआ चौक की ओर चला जा रहा था।

मोहनलाल ने गम्भीरता से सिर हिलाते हुये कहा—"यह दुनिया अजीब जगह है, नारायणदासजी !"

"इसमें क्या शक है, मोहनजी ?"

"कितने ही आदमी तो यहाँ ऐसे हैं जो बेमतलब दूसरों की बुराई किया करते हैं !"

"निन्यानबे फी सदी लोग इसी तरह के हैं। ऐसे लोग बड़े मक्कार होते हैं ! अपनी बुराइयाँ छिपाये रहने ही के लिये ये दूसरों की बुराई करते हैं !"

"इधर कुछ दिनों से एक साहब मेरे पीछे पड़े हुये हैं !"

"यह ज़ात शरीफ़ कौन है ?" माथा सिकोड़ कर नारायणदास ने पूछा।

"यही पता चल जाता तो हज़रत को मज़ा न चखा देता !"

"ही ही ही-ही ! और इस नेक काम में आपको तकलीफ न करनी पड़ती, बस इशारा काफी होता !"

"इस शख्स की बातों में आकर, लाला आत्माराम मुझे [illegible] सुनाया करते हैं। कहते हैं, बदचलनी छोड़ो, [illegible] ! लेकिन, जनाब, मेरा तो ख्याल यह है, कि इन मामलों में हर शख्स का standard अलग अलग होता है !"

"आपका ख्याल बिलकुल ठीक है, मोहनजी !"

"मैं तो इस सिद्धान्त का कायल हूँ, जनाब, eat, drink and be merry !" (खाओ, पियो और मस्त रहो।)

"वाह ! मेरा भी यही सिद्धान्त है। देखिये उमर खय्याम कहता है—

आओ, मधुर वसन्त निशा में
मधु ढालो, भर दो प्याला,
पश्चातापों के शिशिर वसन में
फेंको होलिका की

समय विहग को थोड़ा ही
मार्ग पार करना है अब,
फैला दिये पंख लो, उड़ने,
है यह उड़ने ही वाला।"

"वाह, वाह! जिन्दगी की कैसी जबरदस्त फिलासफी है!"

"एक-एक शब्द में जादू भरा है, जनाब! सारा योरप उमर खय्याम की शायरी पर फिदा है। वहाँ हर शहर में उमर खय्याम क्लब बन गये हैं। उसकी रुबाइयों का अँगरेजी में अनुवाद करके एडवर्ड फिटजरल्ड ने उमर खय्याम को सारी दुनिया में मशहूर कर दिया और अपने लिये भी अँगरेजी साहित्य में स्थायी स्थान बना लिया। देखिये, जनाब, उमर खय्याम आगे कहता है—

भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे,
आगे-पीछे इधर-उधर,
नहीं और कुछ, यह माया की
छाया का है कौतुक भर।
है 'फानूस-ख्याल' एक यह,
दिनकर जिसका दीपक है,
चारों ओर रूपाकारों से
काट रहे हैं हम चक्कर।"

"वाह, वाह! संसार की निस्सारता का कैसा अद्भुत वर्णन है!"

"अपने यहाँ भी तो विश्व को मायामय कहते हैं। फिर, चार दिन की इस जिन्दगी को गले से कफन बाँधकर, रो-रोकर काटने में तो अक्लमन्दी नहीं दिखाई देती!"

"अक्लमन्दी क्या सरासर बेवकूफी है! जब तक जिन्दगी है मौज करना चाहिये, और जब अन्त समय आ जाय तो किसी शायर के शब्दों में कहना चाहिये—

सैर को, फूल चुने,
और बहुत शाद रहे,
बागबाँ जाते हैं,
गुलशन तेरा आबाद रहे!"

"वाह! क्या शेर है! जब तक दिल में जवानी है और जवानी है, तभी तक ज़िन्दगी का मज़ा है। बुढ़ापे में तो हर आदमी को घड़ियाँ रगड़-रगड़कर दिन काटने पड़ते हैं। इसलिए, यथा — make hay while the sun shines! देखिए उमर ख़य्याम फिर कहता है—

खेद कि पावन मधु अचानक
ऋतुपति भी छिप जाय कहीं!
और यह सुरभित यौवन का
खाता भी हो जाय यहीं!
कौन जानता है बुलबुल,
जो इन डालों पर गाती थी,
कहाँ गई वह और कहाँ से
आई थी, है भी कि नहीं!"

"वाह! वाह! क्या लतीफ़ ख़याल है! इसे सुनकर कौन ज़िन्दादिल शख़्स फिर न झूम उठेगा!"

"मैं तो उमर ख़य्याम की रुबाइयाँ इतनी बार पढ़ी हैं कि मन को सब कंठस्थ हो गई हैं। लीजिए, जनाब, निश्चित सामने आ गया।"

"निश्चित! हा हा हा हा! क्या बात कही है आपने! वाह!"

फ़ाक़ामस्ती का दावा बक़ौल ग़ालिब लोग इसे जो चाहें कहें, लेकिन मैं तो इसे निश्चित ही समझता हूँ।"

"और मैं भी आपकी इस अनमोल बात का हृदय से समर्थन करता हूँ। जहाँ संगीत है, यौवन है, सौंदर्य है, स्वर्ग वहीं नहीं है तो फिर कहाँ है!"

मोटर चौक में घुसी। मैंने आते-जाते मनुष्यों, एक्कों, गाड़ियों और मोटरों के कर्ण-कटु शोर से वायुमण्डल व्याप्त था। बातचीत करना असम्भव देखकर, दोनों मित्र निस्तब्ध हो गये।

एक गली के सामने पहुँचकर, मोटर रुका। शोफर ने तुरन्त उतर कर दरवाज़ा खोला। पानी की बोतलें लिये हुये दोनों मोटर से उतरे और गली में घुसे।

उस अद्भुत स्वर्ग की रूप, लावण्य, यौवन-सज्जित एक अप्सरा के घर का द्वार सामने आ गया। चबूतरे पर चढ़कर, वे रुके। मोहनलाल दरवाज़े की सांकल खटखटाने लगा। दो तीन मिनट के बाद एक अधेड़ मीरासी ने दरवाज़ा खोला।

"आदाब अर्ज़ है, अहमद मियाँ!"

"आदाब अर्ज़ है, सेठजी!"—दाँत निकालकर, डाढ़ी हिलाते हुये मीरासी ने उत्तर दिया।

"आदाब अर्ज़, अहमदअली साहब!"

"आदाब अर्ज़ मोहन बाबू! आप लोगों का इन्तिज़ार किया जा रहा है। तशरीफ़ ले चलिये।" मीरासी एक ओर हटकर अदब से खड़ा हो गया।

तब वे ऊपर गये। सामने के कमरे के दरवाज़े पर खड़ी हुई मुन्नी 'नायिका' ने कहा—"आइये, सेठजी! आइये, मोहनबाबू!"

"आदाब अर्ज़ है!"

"

आदाब अर्ज़!"

"हमेशा फूलिये फलिये!"

सब कमरे में जा बैठे। नायिका पानदान खोलकर पान लगाने लगी। बगल के कमरे का दरवाज़ा खुला, और मुन्नी मिट्टन पान चबाती, मुसकराती इठलाती हुई बाहर निकली। कमरे में सौंदर्य, यौवन एवं

सुगंध की लहरें झूमने लगा। आदाब-सलाम की झड़ी लग गई। बड़ी बिट्टन नायिका के बगल में जा बैठी। नायिका ने पानों की तश्तरी मेहमानों की ओर बढ़ा दी। दोनों मेहमानों ने पान खाये। नायिका के हाथ में दो रुपये देकर नारायणदास ने कहा—"गहर, सोडा और पान वगैरह मँगा लीजिये।"

"बहुत अच्छा, अभी मँगाती हूँ।" कहती हुई उठकर, वह कमरे के बाहर चली गई।

आध घंटे के बाद बगल के बन्द कमरे में शराब ढल रही थी। बड़ी बिट्टन को खींचकर अपनी गोद में बिठालकर, नारायणदास ने अपना गिलास उसके होठों से लगा दिया। एक बार 'उहूँक' करके, बड़ी बिट्टन ने थोड़ी-सी शराब पी ली। बाकी शराब पीकर, खाली गिलास सामने रखकर, हाथ फटकार कर नारायणदास ने झूमते हुये कहा—

इस तरु तले कहीं खाने को
रोटी का टुकड़ा हो एक,
पीने को मधु पात्र पूर्ण हो,
करने को हो काव्य विवेक,
तिस पर इस सन्नाटे में तुम,
बैठ बगल में गाती हो,
तो सुन्दर मम इसा विजन में
मुझे स्वर्ग का हो अभिषेक।"

मोहनलाल ने झूमते हुये हाँक लगाई—"वाह, वाह! क्या बात है! आप के जैसा जिन्दा दिल दोस्त पाना नामुमकिन है, नारायण दासजी!"

"मैं इल्म की क़सम खाकर कहता हूँ, मोहनजी, अगर ज़रूरत हो, तो आप के सामने अपना सर काटकर रख सकता हूँ, मोहनजी!"

"खुदा वह दिन न दिखाये ! लेकिन आप से मुझे ऐसी ही उम्मीद है !"

इधर तो रंगरेलियों का बाज़ार गर्म था, और उधर मोहनलाल के अधेड़ पिता, मुंशी माधवप्रसाद अपने बिस्तरे पर उदास भाव से लेटे हुये थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामदुलारी देवी उनके पैर दाब रही थीं। नैराश्य एवं अवहेलनापूर्ण स्वर में मुंशीजी ने कहा—"अपने लायक़ का रंग देख रही हो न ! अभी तक हज़रत नहीं लौटे !"

"अब आता ही होगा !"

"आता ही होगा ! उसकी तरफ़ से वकालत करने के लिये तो तुम हमेशा तैयार रहती हो। तुम्हारे दुलार ने उसे बिलकुल चौपट कर दिया !"

"सभी मातायें अपने बच्चों को प्यार करती हैं, लेकिन प्यार के कारण सभी बच्चे तो चौपट नहीं हो जाते !"

"सभी नहीं चौपट हो जाते, लेकिन मोहन तो हो गया ! मेरा तो यही ख़याल है कि अगर तुम उसके ऊपर कड़ी नज़र रखतीं, तो वह कभी न बिगड़ता। बच्चों के ऊपर किसी की बातों का उतना असर नहीं पड़ता जितना माँ की बातों का पड़ता है !"

"मैं तो उसे हमेशा समझाती-बुझाती रहती हूँ। और, मेरी समझ में मोहन खुद ख़राब लड़का नहीं है, साथियों ने उसे बिगाड़ रखा है !"

"जिस आदमी में ऐब नहीं होता, बुरे साथी उसे नहीं बिगाड़ सकते !"

रामदुलारी देवी को कोई उत्तर न सूझा। उनका मस्तिष्क कहता था, पतिदेव सत्य कह रहे हैं, किन्तु उनके मातृ-हृदय में पुत्र के प्रति असीम दया उमड़ रही थी, और असीम स्नेह !

एक दीर्घ निःश्वास खींचकर, मुंशीजी ने कहा—"बेटा ख़राब से ख़राब क्यों न हो, लेकिन उसके ऊपर साया डालने के लिये माँ का आँचल हमेशा फड़फड़ाता रहता है।"

रामदुलारी देवी की आँखों में आँसू छलक आये।

× × ×

डेढ़ साल बाद की बात है। मुँशी माधवप्रसाद रोग शय्या पर पड़े हुये थे। दो सप्ताह से उन्हें ज्वर था। शहर के दो नामी डाक्टर उनका इलाज कर रहे थे, किन्तु ज्वर उतरने का नाम न लेता था। मोहनलाल की पितृ भक्ति इन दिनों एकाएक सजग हो गई थी। तन मन से वह पिता की सेवा कर रहा था।

रात्रि का समय था। मुँशीजी रोग शय्या पर आँखें बन्द किये पड़े हुये कराह रहे थे। शय्या के समीप एक स्टूल पर बैठा हुआ मोहनलाल पिता का दाहिना पैर अपनी गोद में रखे हुये एक रूमाल से तलुवे पर फेरे दे रहा था। आँखें खोलकर पुत्र की ओर कातर दृष्टि से देख कर, मुंशीजी ने क्षीण स्वर में कहा—"मोहन!"

"जी हाँ, लाला!"

"ज़रा मुझे जल पिला दो बेटा!"

"बहुत अच्छा, लाला!"

पिता का पैर सावधानी से बिस्तरे पर रखकर, उठकर, उधर उस आलमारी के समीप जाकर, एक बोतल से शीशे के एक गिलास में थोड़ा-सा जल लेकर, शय्या के समीप जाकर उसने कोमल स्वर में कहा—"जल लीजिये लाला!"

"अच्छा, पिला दो!"

बायें हाथ से सहारा देकर, उसने पिता को बैठाल दिया। तब उसके हाथ से गिलास लेकर, उन्होंने जल पिया। गिलास उसे देकर वह लेट गये। गिलास धोकर, आलमारी में रखकर वह स्टूल पर जा बैठा, और पिता का दूसरा पैर अपनी गोद में लेकर तलुवे में फेरे देने लगा। कराहकर मुंशीजी ने कहा—"मोहन!"

"जी हाँ!"

"मैं तुमसे खुश हुआ हूँ, बेटा! तुमने अपना फर्ज पूरी तरह पूरा कर दिया। मुझे मालूम होता है कि बहुत जल्द कचहरी का सारा काम तुम्हें अपने ऊपर लेना पड़ेगा, और मुझे यकीन है कि तुम इस काम के काबिल हो। इस वक्त मैं तुमसे एक दरख्वास्त करना चाहता हूँ!"

"आपका हुक्म मानना मेरा फर्ज है"—भर्राए कंठ से मोहन ने कहा।

"बस, तुम्हारे मुँह से मैं यही सुनना चाहता था। मेरी यह इच्छा है कि अब से तुम आवारा साथियों से बचो और सुमार्ग पर चलो।"

महाशयजी निस्तब्ध रहे।

"तुम्हारा ही बेटा, जिसे तुम लाड़-प्यार से पालोगे, अगर जवान होकर तुम्हारी आँखों के सामने आवारा बनेगा, तो तुम्हारे दिल की हालत क्या होगी, तुम्हीं गौर करो। इसलिये, तुम्हें मेरी खातिर वही करना चाहिये, जो कुछ तुम्हारी खातिर तुम्हारे बेटे को करना चाहिये!"

विविध भावों से आन्दोलित, मोहन निस्तब्ध बैठा हुआ फेरे देता रहा।

"बोलो, बेटा! क्या कहते हो?"

"आप की बात बिलकुल सही है। मुझे अपनी हरकतों पर अफसोस है। अब मैं आप से वादा करता हूँ कि आज से सुमार्ग ही पर चलने की कोशिश करूँगा!"

"कोशिश करूँगा नहीं, कहो 'चलूँगा'!"

"जी हाँ, चलूँगा!"

"बस अब मुझे इतमीनान हो गया। अब अगर मरना है, तो शान्ति से मरूँगा!"

"यह आप क्या कहते हैं, लाला! आप बहुत जल्द अच्छे हो जायँगे!"

"नहीं बेटा! अब मुझे ज़िन्दगी की उम्मीद नहीं है!"—उन्होंने आँखें बंद कर लीं।

मोहनलाल की आँखों में आँसू छलक आये।

दूसरे दिन तीसरे पहर शास्त्री जी का देहावसान हो गया। घर में कोहराम मच गया। जब तक मनुष्य जीवित रहता है, वह अपने चारों ओर ममत्व का जाल बुनता रहता है। उसमें वह दूसरों को फँसाये रखता है, और खुद भी फँसा रहता है। और, एक दिन एकाएक जाल से निकलकर जब वह अज्ञात लोक की ओर चल देता है, तो जाल फँसे हुये लोग उसके लिये सिर धुनने लगते हैं।

× × ×

उत्तरदायित्व मोहनलाल को सुमार्ग पर खींच लाया। उनके पिता यथेष्ट सम्पत्ति छोड़ गये थे। पढ़ाई छोड़कर, वह जायदाद की देख-रेख करने लगे।

रंगरेलियों की महफिल उजड़ गई। उनके मनचले साथियों ने निराश होकर उनका पीछा छोड़ दिया। रस-रँग से खिंचकर उनका मन घर में केन्द्रित हो गया।

कुम्हलाती हुई लता हरी हो गई। चन्द्रावती देवी के आनन्द और सन्तोष का ठिकाना न था। सास तथा पति की सेवा और तीन वर्ष के अपने स्वरूपवान, स्वस्थ पुत्र का लालन पालन वह तन मन से करती, और इसी में अपने जीवन को सार्थक समझती।

सुख की समस्त विभूतियाँ उस घर को प्राप्त थीं। लोग उसे ईर्षा की दृष्टि से देखते थे।

दिन का तीसरा पहर था। एक सुसज्जित कमरे में एक कोच पर चन्द्रावती और मोहनलाल बैठे थे। भाँति भाँति के खिलौनों का ढेर सामने रक्खे हुए फर्श पर बैठा हुआ प्रकाश खेल रहा था।

मोहनलाल ने मुस्कराते हुए कहा—"तुम्हारा प्रकाश बड़ा लायक [illegible]"

"उमीद तो मुझे भी यही है।"

"'होनहार बिरवान के होत चीकने पात!' इसकी बुद्धि बड़ी तेज़ है, और इसके रग-रग में चुस्ती भरी हुई है।"

चन्द्रावती प्रकाश की ओर सरल गर्व से देखने लगी।

"इसका माथा कितना चौड़ा है, इसकी आँखें कितनी बड़ी-बड़ी हैं, और नाक कितनी सीधी और नुकीली है! इसका चेहरा कहता है, कि इसे प्रकाण्ड पंडित होना चाहिये!"

मातृ-स्नेह से विह्वल होकर, मोंढा छोड़कर, चन्द्रावती पुत्र के समीप तुरन्त जा पहुँची, और फर्श पर बैठकर, पुत्र को गोद में लेकर, बार-बार उसका मुख चूमने लगी। तब, उठकर, मोहनलाल मुस्कराते हुए उन दोनों की ओर बढ़े।

× × ×

सत्तरह वर्ष बीत गये। बाबू मोहनलाल अब अधेड़ हो गये थे। जमींदारी की देख-रेख, गंगा-स्नान, पूजा-पाठ और दान पुण्य करना, यही उनका कार्यक्रम था।

उनका घर भरा-पूरा था। धन की कमी न थी। तीन बच्चे थे, दो लड़के और एक लड़की। और, गृहस्थी का सुचारु-रूप से संचालन करने के लिये चन्द्रावती-सी चतुर गृहिणी थी।

बाबू साहब के सुखी जीवन में केवल एक खटक थी। वह थी बड़े लड़के, प्रकाशचन्द्र की उच्छृंखलता।

प्रकाश अब जवान हो गया था, और विश्वविद्यालय के बी० ए० की कक्षा में पढ़ता था। वह रंगीन मिज़ाज था, और रंगीन मिज़ाज साथियों के साथ रहना ही उसे पसन्द था।

एक पहर रात जा चुकी थी। बाबू साहब अपने शयनागार में पलंग पर लेटे हुए थे, और चन्द्रावती देवी उनके पैर दाब रहीं थीं।

बाबू साहब ने चिन्तित स्वर में कहा—"देख रही हो, चन्दा, अपने प्रकाश का हाल ! अभी तक नहीं आया !"

"शाम के वक्त, उसने कहा था कि हास्टल में एक लड़के के साथ पढ़ने जा रहा हूँ। वहीं देर हो गई होगी, आता होगा।"

"अजी, वह पक्का बहानेबाज है। पढ़ने वढ़ने नहीं गया, आवारागर्दी करने गया है !"

"लोगों ने आपसे झूठी शिकायत की है ! वह ऐसा नहीं है !"

"सब लोग झूठे हैं और वह अकेला सच्चा है ! वाह री आपकी बुद्धि !"

"शिकायत सही भी हो, तो इसमें कौन-सी अनोखी बात है ! जवानी में सभी थोड़ा-बहुत बिगड़ जाते हैं !"

चन्द्रावती के शब्दों में छिपी हुई ताड़ना ने उन्हें निस्तब्ध कर दिया। उन्होंने करवट बदल ली।

"उसकी चाल-चलन के बारे में आपको शक है, तो आप उसकी शादी क्यों नहीं कर देते !"

"यह तो अब करना ही होगा !" एक दीर्घ निःश्वास त्याग कर, बाबू साहब ने कहा।

सहसा सदर दरवाज़े की जंजीर खटखटाई जाने लगी। फिर किसी ने आवाज़ लगाई—"बाबू साहब ! बाबू साहब !"

"कौन आवाज लगा रहा है ?" बाबू साहब ने कहा।

"बुद्धू और बेनी तो बाहर सो ही रहे हैं, दरवाज़ा खोलकर देख लेंगे !"

"कहीं प्रकाश तो नहीं आया है ? ठहरो, मैं जाकर देखता हूँ !" पलंग से उतरकर, चप्पल पहनकर, बाबू साहब कमरे से बाहर निकले।

बाहर पहुँचकर, बाबू साहब ने देखा, बुद्धू और बेनी प्रकाश को सँभालते हुए खड़े थे। वह बेहोश था।

"अच्छा, इतना पी यह हालत है! इन्हें यहाँ कौन लाया था बेटी!"

"सरकार! भइया के दो साथी पहुँचा गये थे। वही लोग कहते थे कि भइया दारू ज्यादा पी गए हैं, इसलिये वे बेहोश हैं।"

"तुमने उन लोगों को रोका क्यों नहीं?"

"हमने रोका तो था, सरकार। लेकिन वह नहीं रुके, कहा कि हमें जल्दी है।"

"अच्छा, इन्हें इनके कमरे में ले चलो।"

"बहुत अच्छा, सरकार!"

दोनों नौकर और बाबू साहब प्रकाश को किसी तरह उनके कमरे में ले गये। वह बिस्तरे पर लेटा दिया गया। चन्द्रावती देवी दौड़ी आईं। उनकी ओर अवहेलना की दृष्टि से देखकर, बाबू साहब ने कहा—"देख लो अपने सपूत की हालत!"

"अच्छा, बाद में बिगड़ लेना, पहले डाक्टर बुलवाओ!"

सिर झुकाए हुए बाबू साहब कमरे से बाहर निकले। उनके नेत्र सजल थे। सहसा, पूर्वकाल का एक करुण दृश्य उनकी आँखों के सामने आ गया। रोग शय्या पर पड़े हुए उनके पिता उनसे कह रहे थे—तुम्हारा ही बेटा, जिसे तुम बड़े लाड़-प्यार से पालोगे अगर जवान होकर तुम्हारी आँखों के सामने पापड़ बेलेगा, तो तुम्हारे दिल की हालत क्या होगी? तुम्हीं गौर करो।

बाबू साहब की आँखों से आँसू ढुलकने लगे। उन आँसुओं में भावों का तूफान था।

* समाप्त *